भूमिका

तेरह वर्ष हुए, केशवदास पर पहली आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई थी—'केशव की काव्यकला'। यह दूसरी पुस्तक है। इसमें पिष्टपेषण से बचने का भरसक प्रयत्न किया गया है और सामग्री को नए ढंग और नए दृष्टिकोण से उपस्थित किया गया है।

आशा है, यह पुस्तक केशव के अध्ययन को आगे बढ़ाएगी और नए युग के अनुसार उनके मूल्यांकन में सहायक होगी।

प्रयाग,
मार्च, १९४७

रामरतन भटनागर

विषय-सूची

—:o:—

———

जीवनी, व्यक्तित्व और रचनाएँ

केशवदास की जीवनी में गुत्थियाँ बहुत कम हैं। समसामयिक भक्त कवियों सूरदास और तुलसीदास की भाँति, उन्होंने अपने जीवन-वृत्त को अंधकार में नहीं रखना चाहा, इसलिए 'कवि-प्रिया' में केशव ने पहले दो प्रभावों में अपने तथा अपने आश्रय-दाताओं के वंशों का विस्तारपूर्ण वर्णन दिया है।

कवि की कई पीढ़ियाँ ओरछा नरेश के वंश से संबन्धित हैं। केशवदास के पितामह कृष्णदत्त मिश्र ओरछा नगर की नींव डालने वाले ('नगर ओरछो जिन कियो', कविप्रिया) रुद्रप्रताप के यहाँ पुराणवृत्ति पर नियुक्त थे। इनके पुत्र मधुकरशाह अकबर के समकालीन थे। इनके समय में राज्य का विस्तार एवं वैभव बढ़ा। इन्होंने आस-पास के नरेशों और सुलतानों से युद्ध करके उनकी बहुत-सी जमीन हथिया ली थी। केशवदास के पिता काशीनाथ मिश्र इन्हीं को पुराण सुनाया करते थे। बाद को उनके देहांत पर केशव के बड़े भाई 'नखशिख' के प्रसिद्ध लेखक बल-भद्र मिश्र को यह पद मिला। मधुकरशाह के बाद ओरछा [illegible] गद्दी पर रामशाह बैठे। ये जहाँगीर के समकालो[illegible] सारा काम रामशाह के छोटे भाई इंद्रजीतसिंह [illegible] केशवदास इन्हीं इंद्रजीत के दरबार में रहते [illegible] पंडित, पुरोहित और पुराण-पाठी रहे हों[illegible] साहित्य और संगीत का अखाड़ा उसी [illegible] उस समय मुग़लों के कृपाभाव पर आश्रि[illegible]

(४) प्रेम-चित्रण के स्थान पर विलास-वर्णन की प्रतिष्ठा—इसके लिए नायिकाभेद, कामशास्त्र जैसे विषयों पर कविता करना और शृङ्गार-रस का विस्तृत अध्ययन अपेक्षित हो चला था।

(५) ऐश्वर्य-वर्णन—राजाओं और महाराजाओं के आश्रित कवियों की विशेष प्रवृत्ति इसी ओर होनी चाहिए थी। इसी प्रवृत्ति के कारण केशव ने राजाराम को रामचंद्रिका का नायक बनाया।

(६) प्रशस्ति काव्य—प्राचीन काल से राजाश्रय से सम्बन्धित कवि इस प्रकार के काव्य रच रहे थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में अनेक "प्रशस्ति काव्य", "वीरकाव्य" आदि रचे गये थे। मध्ययुग में तो इनकी बाढ़-सी आ गई। वीरता का कोई काम आश्रयदाता ने किया हो, या न किया हो, प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता को दूसरे कवि के आश्रयदाता से ऊँचा बनाने का प्रयत्न करता।

ऊपर जितनी विशेषताएँ कही गई हैं उनमें कवि की उत्कृष्ट कल्पनाशक्ति का अनुरोध प्रगट है। अतः उत्प्रेक्षाओं का इस काल में इतना बाहुल्य रहा है कि कोई भी दूसरा काल उसकी होड़ नहीं कर सकता। तात्पर्य यह, कि राजाश्रय की मूल प्रकृति के कारण काव्य का पतन हो गया था, और उसमें विचित्रता के आयोजन की प्रधानता थी।

इस राजाश्रय की कविता में ही पहली बार नायक के रूप में कृष्ण को स्वीकार किया गया—शृङ्गार काव्य के नायक के रूप में। भक्तिकाव्य के नायक श्रीकृष्ण थे ही, परन्तु मधुरभक्ति का सारा ढाँचा शृङ्गारशास्त्र पर खड़ा है, अतः मधुरभक्ति के नायक को शृङ्गार के नायक होने में कोई देर नहीं हुई। सूरदास की कविता में शृङ्गार की प्रेरणा स्पष्ट है और उनके समकालीन

गदाधर भट्ट, हित हरिवंश और हरिदास की कविताओं में राधा-कृष्ण के केलि-विलास को कामशास्त्र और शृङ्गारशास्त्र के सहारे ही खड़ा किया गया है। नंददास 'रसमंजरी' में "सब रस कृष्ण में ही तो परिणिति पाते हैं"—"सारा सौन्दर्य, आनन्द और प्रेम कृष्ण का ही तो है"—इस विचारधारा को जन्म दिया। इसी तर्क को उपस्थित करते हुए उन्होंने संकोचरहित हो नायिकाभेद की रचना की और कृष्णानुरक्ति को भाव, हेला, रति के नाम से उपस्थित किया। हिततरंगिणी में हम पहली बार रस-निरूपण के लिए राधाकृष्ण के प्रेम-विलास का प्रयोग पाते हैं। सूरदास की साहित्य लहरी (१६०७ सं०) में अलंकार और नायिकाभेद को लेकर राधाकृष्ण के पद लिखने की चेष्टा की गई है। ऐसी ही चेष्टा अधिक पूर्णरूप में कविप्रिया और रसिकप्रिया में मिलती है। इस प्रकार रीतिकाव्य में कृष्ण का नायकत्व पहली बार लक्षणों के उदाहरणों में प्रगट हुआ। इसके बाद जब फुटकर असंबन्धित कवित्त-सवैये इन लक्षण ग्रन्थों के उदाहरणों की प्रेरणा से बनने लगे, तो सारे काव्य में ही राधाकृष्ण नायक-नायिकारूप में व्याप्त हो गये। जब हम देखते हैं कि राजाश्रय में संगीत और काव्य दोनों का प्रवाह बह रहा था, संगीत के लिए राधाकृष्ण के शृङ्गारपद ही प्रचलित थे, और अधिकांश अच्छे गायक रसशास्त्र-विज्ञ और कवि भी थे, तब यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि दरबारों में ही कृष्ण को रीतिकाव्य के नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। जिन कवित्त-सवैयों का दौर-दौरा [illegible] उनकी थोड़ी बहुत रचना भक्तिकाव्य में भी हो चुकी थी, [illegible] और नंददास प्रभृति कृष्णभक्त कवियों के भी [illegible] मिलते हैं, यद्यपि अभी उनकी कला पुष्ट [illegible] कवित्त-सवैये श्रव्यकाव्य के लिए वि[illegible] इन्हीं में अधिकांश रीतिकाव्य प्रका[illegible]

मानस में यह भेंट स्वयम्बर सभा में होती है। परन्तु जहाँ वाल्मीकि में इस प्रसंग में केवल राम और तुलसी में रामलक्ष्मण भाग लेते हैं, वहाँ यहाँ चारों भाई भाग लेते हैं, विशेषकर भरत और लक्ष्मण। इसके अतिरिक्त यहाँ जब दोनों राम क्रोध करते हैं तो महादेव आकर उपस्थित हो जाते हैं और उन्हें शान्त करते हैं। परशुराम तब भी रामावतार में संदेह करते हैं और अपने नारायणी धनुष से परीक्षा करते हैं। शेष उसी तरह है जैसा अन्य स्थानों पर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालकांड की कथा चार प्रकाशों में कही गई है (३-७)। इस कथा में कई मौलिकताएँ हैं जैसा हम ऊपर दिखा चुके हैं। केशव ने कथा को वाल्मीकि के आधार पर ही खड़ा किया है—परन्तु उसमें कुछ मानस के आधार पर कुछ अपनी मौलिकता के बल पर अन्तर रक्खा है। आठवाँ प्रकाश रामकथा-विकास की दृष्टि से महत्त्वहीन है, क्योंकि उसमें केवल अयोध्या और बरात के स्वागत का वर्णन है।

अयोध्याकांड की कथा केवल दो प्रकाशों (६-१०) में कह दी गई है। सच तो यह है कि रामकथा के इस अत्यन्त नाटकीय, मनोवैज्ञानिक और सरस अंश के साथ केशवदास ने इतना अत्याचार किया है कि उनकी प्रतिभा पर ही संदेह होने लगता है। किसी भी रामकथा में—प्रसन्नराघव जैसे नाटकों को छोड़कर जहाँ वस्तु-संघटन हो दूसरी प्रकार का है—वनवास-कथा को इतने संक्षेप में नहीं कहा गया है—

दसरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठ सों मंत्र लये
दिन एक कहो सुभ सोभ रयो। हम चाहत रामहि राज दयो

यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊँ बन रामहिं बुद्धि गुनी
तेहि मन्दिर यों नृप सों विनयो। वर देहु हुतो हमको जु दयो

नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो
नृप तासु विसेस भरत्थ लहैं। बरषै वन चौदह राम रहैं

यह बात लगी उर वज्र तूल
हिम फाट्यौ ज्यौं जीरन दुकूल
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम
तजि तात मातु तिय बन्धु धाम

राम कौशल्या के घर जाते हैं। फिर लक्ष्मण को साथ ले सीता के पास आते हैं। सीता-राम-सम्वाद में तुलसी का रंग है। फिर राम लक्ष्मण से रह जाने को कहते हैं। अंत में तीनों वन चल देते हैं। सुमन्त के साथ जाने की बात तो है ही नहीं। यहाँ तो—

रामचन्द्र धाम तें चले सुने जवै कृपाल
बात को कहै सुने सुछै गये यहाँ विहाल
ब्रह्मरन्ध्र फोरि जीव यों मिल्यो जु लोक जाय
वोह तूरि ज्यों चकोर चन्द्र में मिलै उड़ाय

वाल्मीकि में वन-पथ का वर्णन नहीं है। तुलसी में यह वर्णन सुविस्तृत है। वन-पथ की झाँकी तुलसी की अपनी सूझ है और केशव उसी से प्रभावित जान पड़ते हैं। भरत के ननिहाल से लौटने, माता से मिलने, उसे धिक्कारने, कौशल्या के पास जाकर शपथ खाने आदि प्रसंग अत्यन्त संक्षेप में हैं। और वे रामचरित मानस से पूरा मेल खाते हैं। केशव बिना किसी संदर्भ के कथा आगे बढ़ाते हैं। भरत के ससैन्य चित्रकूट पहुँचने की कथा देखिए। कितने संक्षेप में है—

पहिरे वकल सुजटा धरिकै। निज पायन पंथ चले अरि [illegible]
तरि गङ्ग गये गुह सङ्ग लिये। चित्रकूट विलोकत छाँड़ि[illegible]

(दसवाँ प्रका[illegible]

भरत के आगमन पर लक्ष्मण का क्रोधादि मान[illegible]

प्रयत्न किया है।" कहीं-कहीं तो अनुप्रास के अनुरोध में वे मर्यादा से भी विचलित हो गए हैं। राम के ऐश्वर्य के सम्बन्ध में एक जगह उन्होंने लिखा है—

बासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत

इसी तरह दूसरी जगह

काको घर घालिबे को बसे कहाँ नगरगाम
घूघू ज्यों घुमत प्रात मेरे गृह आए गो

प्रातःवंदनीय अवतारों को 'उलूक' और "घूघू" बनाने का साहस किस हिन्दू कवि को होगा, विशेषकर उस समय जब वह स्वयम् अपने को इतना भक्त घोषित करता हो।

५—छंद

रामचंद्रिका में केशव ने पिंगल के लगभग सभी छन्दों का प्रयोग किया है जिससे उनका ग्रन्थ उदाहरण-ग्रन्थ हो गया है। पहले प्रभाव में एक वार्णिक छन्द से लेकर अष्ट वार्णिक छन्द तक मिलते हैं। इस प्रकार का प्रयास है कि सारे छन्दों में कथा कही जाय। संस्कृत में भट्टिकाव्य और राघवविजय ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें कवि रामकथा कहता है, परन्तु वस्तुतः उसका विषय अलंकार के उदाहरण उपस्थित करना है। यद्यपि केशव ने रामचन्द्रिका में अलंकारों को भी निरूपित किया है, परन्तु उनका विशेष ध्यान छन्द पर ही है। छन्द अधिक नहीं हैं, इसलिए कुछ छन्द कई बार उपस्थित हैं। इसी तरह का एक प्रयत्न "रघुनाथ गीतांरो" डिंगल ग्रन्थ है। इसमें भी छन्दों के उदाहरण में रामकथा कही गई है। केशव इस प्रकार के प्रयत्नों से परिचित अवश्य थे, अतः उन्होंने काव्य-कुशलता को रामकथा के मत्थे मँढ़ने की चेष्टा की। उन्होंने छन्द ही तक अपने को सीमित

न रखकर अलंकारों, काव्य-दोषों, काव्य-गुणों, व्यंग सभी के उदाहरण एक ही ग्रन्थ में उपस्थित कर दिये।

६—व्यंग

केशव सुन्दर व्यंग-काव्य लिखते हैं—वास्तव में यदि इस ओर उनकी प्रतिभा अधिक आकृष्ट हुई होती, तो अच्छा होता। राम के व्याह के समय नारियों की गालियाँ और अंगद-रावण सम्वाद इस बात के साक्षी हैं।

७—रामचंद्रिका में सम्वाद

केशव अपने सम्वादों के लिए प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि जिस तरह के सम्वाद केशव ने लिखे हैं, उस तरह के सम्वाद किसी अन्य कवि ने नहीं लिखे, तुलसीदास ने भी नहीं। यह अवश्य है कि सम्वाद लिखने के लिए लेखक को ऊँचे दरजे का व्यवहारज्ञान होना आवश्यक है। वह व्यवहारज्ञान ऐसे ही कवि में विशेष रूप से हो सकता है जिसकी दृष्टि लोक-जीवन पर गहरी पड़ती हो और जो लोक-जीवन की धारा में ही बहता हो। सूरदास और तुलसीदास प्रभृति धार्मिक कवियों के लिए लोक-जीवन का ज्ञान उतना आवश्यक नहीं था, वे भक्त थे। उन्हें संसार के आचार-विचार और व्यवहार को लेकर क्या करना इस पर भी उन्होंने अपने अपने क्षेत्रों में सम्वाद-लेखन में बड़ी कुशलता दिखाई है।

परन्तु केशव के सम्वाद उस श्रेणी के नहीं हैं, जिस श्रेणी के तुलसी और सूर के सम्वाद। तुलसी को अपने सम्वादों के लिए प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक का सहारा लेना पड़ा है, सूरदास का "भ्रमरगीत" गोपी-उद्धव-सम्वाद काव्य ही है, परन्तु सम्वाद की अपेक्षा वहाँ "भाव" पर कवि की दृष्टि अधिक है।

केशव भी उन ग्रन्थों के लिए ऋणी हैं जिनके तुलसी, परन्तु उन्होंने वाग्चातुर्य, व्यङ्ग, परिहास और अनेक मौलिक प्रसंगों की योजना स्वयं मौलिक रूप से की है।

जिन सम्वादों की आलोचकों ने विशेष रूप से प्रशंसा की है, ये हैं—(१) दशरथ-विश्वामित्र-वशिष्ठ-सम्वाद (दूसरा प्रकाश), (२) रावण-बाणासुर-सम्वाद (तीसरा प्रकाश), (३) जनक-विश्वामित्र सम्वाद (पाँचवाँ प्रकाश), परशुराम-सम्वाद (७वाँ प्रकाश), सूर्पनखा-राम-लक्ष्मण सम्वाद (११वाँ प्रकाश), रावण-हनुमान-सम्वाद (१४वाँ प्रकाश), अङ्गद-रावण-सम्वाद (१६वाँ प्रकाश), लव-कुश-भरतादि-सम्वाद (१६वाँ प्रकाश)। छोटे-छोटे अनेक सम्वाद हैं परन्तु वे महत्व पूर्ण नहीं हैं। ऊपर लिखे सम्वादों में भी सुमति-विमति-सम्वाद, रावण-बाणासुर-सम्वाद, परशुराम-सम्वाद और रावण-अङ्गद-सम्वाद विशेष महत्व रखते हैं। पहले हम कथा का पहला सम्वाद "दशरथ-विश्वामित्र-सम्वाद" की विवेचना करेंगे। केशव में यह सम्वाद इस प्रकार है—

बहु भाँति पूजि सुराय। कर जोरि कै परि पाय
हँसि के कह्यौ ऋषिमित्र। अब देहु राज पवित्र

विश्वा०—

सुनि दान मानस हंस। रघुवंश के अवतंस
मन माँह जो अति नेहु। एक वस्तु माँगहि देहु

राजा०—

सुमति महामुनि सुनिये। तन धन को मन गुनिये
मन महँ हास सु कहिये। धनि सु जु अपुन लहिये

विश्वा०—

राम गये ते बन माँही। राकस बैर करैं कछु थाहीं
रामकुमार हमैं नृप दीजे। तौ परिपूरण यज्ञ करीजे

राजा०—

अति कोमल केशव बालकता। बहु दुस्तर राकस पालकता
हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै। सजि सेन चलै चतुरंग सबै

विश्वा०—

जिन हाथन हठि हरप हनत हरिनी रिपुनन्दन
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयन्दन?
जिन वेधत सुख लक्ष लक्ष नृप कुँवर कुँवर गनि
तिन बानन बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि
नृपनाथ नाथ दशरत्थ यहँ अकथ कथा नहिं मानिये
मृगराज-राजकुल-कलस कहँ, बालक, बृद्ध न जानिये

राजन के तुम राज बड़े अति
मैं मुख मांगों सुदेहु महामति
देव सहायक है नृपनायक
है यह कारज रामहि लायक

राजा०—

मैं तु कह्यौ ऋषि देन सु लीजिय
काज करो हठ भूलि न कीजिय
प्राण दिये धन जाहिं दिए सब
केशवराय न जाहिं दिये अब

ऋषि०—

राज तज्यो धनधाम तज्यो सब
नारि तजी सुत सोच तज्यो तब
आपन परै तज्यौ जगबंद है
सत्य न एक तज्यो हरिचन्द है

(जान्यो विश्वामित्र के कोप बढ्यो उर आय
राजा दशरथ को कह्यो, वचन वशिष्ठ बनाय)

इस प्रसङ्ग और सम्वाद की तुलना हम मानस से करते हैं तो हम तुलसी और केशव के दृष्टिकोणों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।
तुलसी कहते हैं—

दशरथ०—

(तब मन हरषि वचन कह राऊ)। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा

विश्वा०—

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा
देहु भूप मनः हरषित तजहु मोह अग्यान
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान

(सुनि राजा अति अप्रिय वानी। हृदय कम्प मुख दुति कुम्हलानी)

दशरथ०—

चौथे पन आयउँ सुत चारी। विप्र वचन नहिं कहेहु विचारी
माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्वस देउँ आज सहरोसा
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माँही
सब सुत प्रिय मोहिं राम की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा
(सुनि नृप गिरा प्रेमरस सानी। हृदय हरष माना मुनि ग्यानी)
तब वशिष्ठ बहुविधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ
सौंपे भूप रिसिहिं सुत बहुविधि देइ असीस
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस

दोनों सम्वादों की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि केशव के संवाद में तर्क है, तुलसी के संवाद में पितृ-हृदय। इसी कारण केशव का संवाद शुष्क है, तुलसी का संवाद रस से छलकता हुआ पात्र है। केशव के दशरथ विश्वामित्र से प्रणबद्ध हो जाते हैं, अतः जब ऋषि—

"सत्य न एक तजौ हरिचंद है"

की दुहाई देते हैं, तब राजा चक्कर में पड़ जाते। वशिष्ठ उन्हें इस परिस्थिति से उबारते हैं। परन्तु तुलसी के संवाद में भीरु पिता का चित्रण है। भीरुता का कारण है पितृवत्सलता। उनका दुख यही है—

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा

केशव के विश्वामित्र जहाँ पौराणिक क्रोधी विश्वामित्र हैं, वहाँ तुलसी के विश्वामित्र रामभक्त हैं, यद्यपि प्रच्छन्न। इसीलिए तो

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी

यहाँ वशिष्ठ क्रोधी कवि के डर से राजा को नहीं समझाते। इस प्रकार प्रसंग में रामभक्ति एवं वत्सलरस की योजना कर तुलसी ने अपने सम्वाद को जो मधुरता दी है वह केशव के सम्वाद में ज़रा भी नहीं है।

केशव का हनुमान-रावण-संवाद व्यङ्ग और वाग्वैदग्ध्य का सुन्दर उदाहरण है—

रावण—रे कपि कौन तू
हनु०— अक्ष को घातक दूत बली रघुनन्दनजू को
रावण—को रघुनन्दन रे

हनु०— त्रिशिरा खर दूषण—दूषण भूषण भू को
रावण—सागर कैसे तर्यौ
हनु०— जस गोपद
रावण— काज कहा ?
हनु०— सिय चोरहि देखो
रावण—कैसे बधायौ ?
हनु०— जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो

सारा सम्वाद इस एक मत्तगयंद सवैया में है। इतने संक्षेप में इसे रखने के कारण क्लिष्टता आनी स्वाभाविक थी। परन्तु केशव तो प्रसादपूर्ण कथन जानते ही नहीं। इस छन्द में वे युक्ति-पूर्वक राम के महात्म्य, रूप और बल का तथा रामभक्तों के आचरण का वर्णन करते हैं। राम का बल कैसा है—वे हजारों की सेना को एक पल में मार सकते हैं। महात्म्य कैसा है—उनके सेवक अक्षय (अमर) को भी मार सकते हैं। रूप कैसा है—सारे संसार का भूषण है। रामसेवक संसार कैसे तरते हैं—जैसे गोपद। रामसेवक काम क्या करते हैं—केवल राम-सम्बन्धी कार्य। इस कथन में राजभक्तों के आचरण की कितनी सुन्दर व्याख्या है—"तू बंदी क्यों हुआ रे।" हनुमान कहते हैं—तेरी स्त्री को सोते हुए देख लिया। इसी पाप से वन्दी होना पड़ा। व्यंग्य है कि रामभक्त परस्त्री को आँख से देखने को भी पाप समझते हैं और उसके दण्ड को योग्य जानते हैं। साधारण पाठक की समझ में यह व्यंजना नहीं आ सकती। इस प्रकार की उक्ति "सूझ" का ही विषय है, वह मस्तिष्क की उपज है हृदय की नहीं। सारे सम्वाद में न कोई रस है न कोई हृदयग्राही बात ही कही गई है। "गागर में सागर" भरने के प्रयत्न में गागर भी खाली ही रह गई है।

तुलसीदास के हनुमान-रावण-सम्वाद में लोग कई प्रकार की त्रुटियाँ बताते हैं :

१—उसमें काफ़ी गाली-गलौज है। हनुमान और रावण दोनों 'शठ', महाअभिमानी, अधम, मूढ़ आदि गालियों का प्रयोग करते हैं। जान पड़ता है दो गँवार लड़ रहे हैं, राजसभा नहीं है।

२—हनुमान-रावण का (जो शत्रु है) राम के परब्रह्म स्वरूप के सम्बन्ध में एक बड़ा प्रवचन है जो उनके दूतत्व की दृष्टि से असंगत और अवांछनीय है। जैसे इस प्रकार की उक्ति

रामचरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम्ह करहू

जिसमें हनुमान भक्ति का उपदेश दे रहे हैं परन्तु तुलसी ने सारी रामकथा में (सम्वादों में भी) रामभक्ति की व्याप्ति तो कर ही दी है। यह चाहे उनकी कमजोरी हो, परन्तु भक्ति-काव्य की दृष्टि से यही उनका बल भी कहा जा सकता है। उन्होंने अपने सम्वाद पर स्वयं सूत्रबद्ध आलोचना लिख दी है—

भक्ति विवेक विरति नय सानी

परन्तु जहाँ तुलसी में ये सब त्रुटियाँ हैं, वहाँ कम-से-कम उनका एक मंतव्य तो सध जाता है। रामभक्ति का एक सुन्दर उपदेश तो मिलता है। तुलसी का लक्ष्य भी तो यही है। केशव के सम्वाद में वाक्-चातुरी के सिवा और क्या है! हो सकता है कि राजदरबार में इस प्रकार के कूट-सम्वाद चलते हों परन्तु उनसे किसी भी काव्य को गौरव नहीं मिल सकता। केशव को व्यङ्ग प्रिय है। वह सरलार्थ की ओर जाते ही नहीं। इस कारण उनकी कल्पना शब्द-जाल को ही पँखों से बाँध कर उड़ने लगती है और हास्यास्पद हो जाती है।

इससे भी कहीं उत्कृष्ट सम्वाद अंगद-रावण-सम्वाद कहा जाता है जो १६वें प्रकाश का विषय है। वास्तव में जो लोग

केशव के सम्वादों की प्रशंसा करते हैं, उनका आधार यही होता है। यहाँ कवि ने भूमिका में ही लिखा है—

यह वर्णन है पोड़शे केशवदास प्रकाश
रावण अंगद सों विविध शोभित वचनविलास

यह "वचनविलास" ही यहाँ ध्येय है। इस सम्वाद के कई गुण बताये जाते हैं—

(१) इसमें भावी की सूचना दी गई है जैसे—

लंकनायक को ? विभीषण देवदूषण को दहै
मोहि जीवित होहि क्यों ? जग तोहि जीवित को कहै

रावण पूछता है कि किस लंकनायक का दूत तुमने अपने को बताया। वह लङ्कनायक कौन है ? हनुमान कहते हैं—वह विभीषण है। जो शत्रुओं के हृदय को जलाता है। व्यंग्य है कि तुमसे शत्रुता है तुम्हें भी जलायेगा। अङ्गद का यह कथन नितांत सत्य हुआ, क्योंकि रावण की दाह-क्रिया विभीषण ने ही की। रावण पूछता है—मेरे जीते जी वह लंकनायक कैसे होगा ? अङ्गद कहता है—संसार में तुझे जीवित कौन कहेगा (अर्थात् तू तो मृतक ही है—यह व्यङ्ग है।) परन्तु इस प्रकार कथासूत्र के आगामी अंशों का प्रच्छन्न प्रकाशन चाहे जिस दृष्टि से श्लाघ्य हो, वह सम्वाद को अनैसर्गिक बना देता है। कम-से-कम, वह कोई ऐसी चीज नहीं जो काव्यकला की दृष्टि से परखी जा सके।

(२) इस संवाद में रावण अंगद को अपनी ओर तोड़ लेने की भरसक चेष्टा करता है, जैसे—

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपि पुंज तिहारे
आठहु आठ दिसा बलि दे अपनो पहुलै पितु जालति मारे
तोसे सपूतहि जाय कै बोलि अपूतन की पदवी पग धारे
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतौ वपु मारे

(हे अंगद, नील, सुखेन, हनुमान और नल चार ही वीर तो उनके पक्षपाती हैं और समस्त कपि-सेना तो तेरी ही है। अतः आठों को आठों ओर बलिदान करके तू अपने बाप को मारने का बदला ले। तुझसा सपूत पैदा करके बालि निपुत्रों की-सी गति को प्राप्त हो (धिक्कार है तुझे !)। अरे अंगद, यदि तू डरता है तो ले। मेरी समस्त सेना को ले जाकर आज ही अपने बाप के हत्यारे को क्यों नहीं मारता।)

अंगद कहता है—

शत्रु सम मित्र इम चित्त पहिचानहीं
दूतविधि नून कबहूँ न उर आनहीं
आप मुख देखि अभिलाप अभिलापहू
राखि भुज सीस तव और कहँ राखहु

"हे रावण हम अपने शत्रु, मित्र और उदासीन लोगों को अपने मन में अच्छी तरह समझते हैं। तुम्हारी इस नवीन भेद-नीति को मैं स्वीकार नहीं करता। अपना मुँह देख कर तब राम को मारने की अभिलाषा करो, पहले अपने सिरों और भुजाओं की रक्षा कर लो, तब और की रक्षा करना।"

रावण फिर भी हतोत्साह नहीं होता, शायद अंतिम समय में अंगद पितृघाती के प्रति कठोर हो जाय, एक प्रयत्न और न कर लिया जाय। वह कहता है—

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे
तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे
वै जो सबै चाहत तोहि मार्‍यो
मारों कहा तोहिं जो दैव मार्‍यो

यानी राम-सुग्रीवादि तो तुझे मुझसे मरवाना ही चाहते हैं, इसी लिए तुझे दूत बनाकर यहाँ भेजा है कि मेरे हाथों से मारा जाय। सो अब मैं तुझे क्या मारूँ, तुझे तो दैव ने ही मार रखा है

(शत्रुओं के बीच में रहता है, तो किसी-न-किसी दिन अवश्य मारा जायगा)

परन्तु अंगद अब भी राम के पक्ष में दृढ़ हैं और रावण हताश होकर उससे इस विषय में बात करना ही छोड़ देता है।

तुलसीदास के रावण-अंगद-संवाद में एक बार फिर राम को मनुष्य मानने वाले रावण को गुरु-उपदेश दिलाया गया है और उनके परब्रह्म, सर्वभक्षी, सर्व-समर्थ रूप से परिचित कराया गया है—भक्तिकाव्य की दृष्टि से यह सब श्लाघ्य है, परन्तु शेष प्रसंगों को बहुत कुछ केशव से समानता है, जैसे

रावण—कौन के सुत

अंगद— वालि के

रावण— वह कौन वालि न जानियें

अंगद—कांख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानियें

रावण—है कहाँ वह

अंगद— देवलोक

रावण—क्यों गयो ?

अङ्गद— रघुनाथ-बान-विमान वैठि सिधाइयो

तुलसी ने भी सम्वाद के प्रारम्भिक भाग को इसी प्रकार रखा है—

रावण—कहु निज नाम जनक कर भाई।

अङ्गद—अंगद नाम वालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा।

रावण— × × × रहा वालि बानर मैं जाना

अंगद ताहि वालिकर बालक। उपजेउ वंस अनलकुल घालक

यहाँ तक दोनों कवि हनुमन्नाटक के संवादों को ही लेकर चल रहे, परन्तु बाद को दोनों की प्रवृत्तियों और भिन्न-भिन्न लक्ष्य के कारण भेद हो जाता है। रामचरितमानस भक्ति-काव्य है, अतः

तुलसी आगे अंगद से रामभक्ति का उपदेश दिलाते हैं और राम के अवतारत्व कोप्रतिष्ठा कराना चाहते हैं। उनका लक्ष्य इन शब्दों में स्पष्ट है

राम मनुज कस रे शठ बङ्गा। धन्वी कामु नदी पुनि गङ्गा
पसु सुर धेनु कल्पतरु रूखा। अन्नदान अरु रस पीयूषा
वैनतेय खग अहिरह मानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन
सुनु मति मरे लोक बैकुण्ठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा

परन्तु केशव केवल चमत्कार तक ही रह जाते हैं। उनका लक्ष्य बड़ा नहीं है, अतः राजदरबार के ज्ञान से मंडित होने पर भी उनके सम्वाद तुलसी की होड़ नहीं कर सकते। तुलसी के सम्वादों का एक लक्ष्य है, एक ध्येय है, केशव के सम्वाद स्वयं-निष्ठ हैं, उनकी सार्थकता वे ही हैं। अंगद और रावण उनके काव्य में पैंतरें बदलकर ही रह जाते हैं। कहीं-कहीं स्पष्ट ही अलंकार लक्ष्य है जैसे रावण की इस व्याज-स्तुति में

डरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै
परद्रव्य छोड़ै परस्त्रीहि लाजै
परद्रोह जासौं न होवै रती को
सो कैसे लरै वेष कीहों यती को

(जो गाय और ब्राह्मण से डरता है, अनाथ को देखकर भागता है, परद्रव्य ग्रहण नहीं करता, जिससे एक रत्ती भर भी परद्रोह नहीं हो सकता, वह यती वेषधारी राम मुझसे क्या लड़ सकता है?)

वास्तव में, केशव के काव्य के दो अंग ऐसे हैं जिनमें उनकी रुचि संतुष्ट होती है—सम्वाद और वर्णन। इन्हें सजाने के लिए उन्होंने विभिन्न वाग्वैदग्ध्य और काव्य-कौशल का सहारा लिया है। अनुप्रास, यमक श्लेष—ये उनके आगे इस प्रकार हाथ बाँधे

खड़े रहते हैं जैसे उनके रावण के आगे ब्रह्मा, कुबेर, सूर्य, नारदादि और इंद्र। इनमें उन्होंने अपने सारे अध्ययन और लोक-निरीक्षण का भार रख दिया है। इन सम्वादों का "कलापक्ष अत्यंत प्रबल है। उनकी (केशव की) बुद्धि प्रखर है और दरबारी होने के कारण वावैदग्ध्य ऊँचे दरजे का है। रामचंद्रिका सुन्दर और सजीव वार्तालापों से भरी है। व्यंजनाएँ कई स्थान पर बहुत अच्छी हुई हैं।" (आचार्य कवि केशवदास—श्री पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

परन्तु इन "सुन्दर और सजीव" वर्तालापों में हृदय दूर तक नहीं है, और व्यंजना को पूर्णतः समझने के लिए मस्तिष्क पर बड़ा बल देना होता है।

तुलसीदास और केशवदास दोनों के सामने दो संस्कृत नाटक थे, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक। दोनों अपने सम्वादों के लिए इनके ऋणी हैं। परन्तु तुलसी के सम्वादों पर हनुमन्नाटक का अधिक प्रभाव है, केशव के सम्वादों पर हनुमन्नाटक का प्रभाव कम है, प्रसन्नराघव का अधिक है। केशव के अधिकांश सम्वादों में जो वक्रता और व्यंजना पाई जाती है वह प्रसन्नराघव की देन है। हनुमन्नाटक पर काव्यतत्त्व, ध्वनि और व्यंजना की इतनी गहरी छाप नहीं है, जितनी प्रसन्नराघव पर, अतः उसके अनुकरण में केशव में भी विषय-प्रगल्भता और प्रसाद गुण के स्थान पर यही विशेतपा आ गई है।

दूसरी बात यह है कि तुलसी मूल के अधिकांश स्थानों को परिवर्द्धित एवं परिवर्तित कर देते हैं। सरलता और सरसता की ओर उनका आग्रह विशेष है, परन्तु केशव मूल भाव का अनुवाद ही करते हैं। और कभी-कभी असफल अनुवाद से ही संतुष्ट हो जाते हैं। वे अपने स्फुट छन्दों के प्रयोग के कारण उस प्रकार का

संदर्भ भी स्थापित नहीं कर पाते जैसा तुलसी दोहा-चौपाइयों के प्रवाहमय काव्य में। एक-दो उदाहरणों से यह बात ठीक रूप से समझ में आ जायगी। हनुमन्नाटक में अंगद-रावण-सम्वाद का आरम्भ इस प्रकार है—

> कस्त्वं वालितनूद्भवो रघुपतेर्दूतः सः वालीति कः
> कोवा वानर राघवः समुचिता ते वालिनो विस्मृतिः
> त्वां वध्वा चतुरम्बराशिषु परिभ्राम्यन्मुहूर्तेन यः
> संध्यामर्चयति स्म निस्त्रय कथं तावस्त्वया विस्मृतः

इसे केशव ने इस प्रकार रखा है—

> कौन के सुत ? वालि के, वह कौन वालि न जानिए ?
> काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात वखानिए
> है कहाँ वह ? वीर अङ्गद देवलोक वताइयो
> क्यों गयो ? रघुनाथ-वान-विमान वैठि सिधाइयो

ज़रा उसकी तुलना तुलसीदास की इन पंक्तियों से कीजिये हम पीछे उद्धृत कर सकेंगे। यहाँ कवि ने मूल का संकेत ही ग्रहण किया है। अंगद कहता है—

> अङ्गद नाम वालिकर वेटा। तासो कवहुँ भई ही भेटा

इस पर रावण

> अङ्गद वचन सुनत सकुचाना

इस तरह सारे प्रसंग की व्यंजना हो जाती है। इसके वाद भी वे 'रामचन्द्रिका' के कवि की भाँति कवित्वहीन ढंग से मृत्यु की सूचना नहीं देते। यह सम्भव नहीं है कि रावण के दूतों ने उसको राम की प्रगति और उनके द्वारा वालि की हत्या की वात न वताई हो। अतः यहाँ सतर्कता से काम लेकर तुलसी इतना ही कहते हैं—

रावण—अब कहु कुशल बालि कहँ अहई

अंगद हँसकर कहते हैं—

दिन दस गए बालि पहँ जाई। पूछेउ कुशल सखा उर लाई
राम विरोध कुशल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई

इस प्रकार के परिवर्तन में काव्यत्व की तो रक्षा हुई ही है, संवाद का रूप भी निखर गया है।

तुलसी यह भी जानते हैं कि कब मौनसाधन अधिक श्रेयस्कर होगा, कब वाचाल होना ठीक होगा। अपनी रचना में उन्होंने प्राकृतकला के दृष्टिकोण को भी सामने रखा है, इसी से प्रसन्न-राघव का जनक स्वयंवर-सभा में रावण-बाण प्रसंग उन्होंने नहीं अपनाया। इससे कलारत्न को हानि नहीं हुई, नहीं तो यह भी स्थापित हो जाता कि रावण सीतावरण में असफल रहा इसलिए उसे राम से स्वभावतः चिढ़ थी और वह सीता का प्रच्छन्न प्रेमी था। परन्तु इस सूत्र को विकसित किए बिना ही केशवदास ने रावण-सम्वाद को रामचन्द्रिका के चौथे प्रकाश में स्थान दिया है। यहाँ उन्होंने केवल इतना परिवर्तन किया है कि प्रसन्नराघव के नूपुरक और मंजीरक को सुमति-विमति कर दिया है। वास्तव में सारे प्रसंग को किंचित भी परिवर्तन किए बिना वहीं से उठा लिया गया है। तुलसीदास इस प्रसंग से पूर्णतः परिचित थे। उन्होंने इसकी कुछ सामग्री का अन्यथा उपयोग किया है, जैसे

वाणस्य वाहु शिखरैः परिपीड्यमानं
भेदं धनुश्चलति किंचितमीन्दुमौलेः
कामातुरस्य वचसामिव संवधिनै
रभ्यर्थितं प्रकृति चारुमनः सतीमाम्

यहाँ वाण के सम्बन्ध में दी गई उपमा को तुलसीदास ने सभी राजाओं पर आरोपित किया है, जैसे

भूप सहसदस एकहि वारा । लगे उठावन टरइ न टारा
डिगइ न संभु सरासन कैसे । कामी वचन सती मनु जैसे

परन्तु सारी सामग्री को कलापरिधि के बाहर जाती देख तुलसी ने उसका पूरा-पूरा उपयोग अवांछनीय समझा। प्रसन्नराघव के परशुराम रूप-वर्णन का एक तुलनात्मक अध्ययन कर इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। प्रसन्नराघव में है—

मौर्वीधनुस्तनुरियं च विभर्ति मौञ्जीं
वाणाः कथाश्च विलसन्ति करेसिताग्रः
धारोज्ज्वलः परशुरेषं कमण्डलुश्च
तद्वीरशान्तरसयोः किमयं विकारः ।

इसे रामचन्द्रिका में यों ही चार पंक्तियों में अनुवादित रख दिया है—

कुश मुद्रिका समिधैं श्रुवा कुश और कमण्डल को लिए
कटिमूल श्रोननि तर्कसी भृगुलाल-सी दरसै हिए
धनुवान तिक्ष कुठार 'केशव' मेखला मृगचर्म स्यों
रघुवीर को यह देखिये रस वीर सात्विक धर्म ज्यों

देखिये, इसे ही तुलसी कितने परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन के साथ उपस्थित कर रहे हैं—

गौर सरीर भूति भल भ्राजा । भाल विसाल त्रिपुंड विराजा
सीस जटा ससि बदनु सुहावा । रिसबस कछुक अरुन होइ आवा
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते । सहजेहुँ चितवत मनहुँ रिसाते
वृषभकंध उर बाहु विसाला । चारु जनेउ माल मृगछाला
कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे । धनु सर कर कुठारु कल काँधे

सांत बेसु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप
धरि मुनितन जनु वीररस आयउ जहँ सब भूप

यहाँ तुलसी और केशव में जितना भेद है, वही भेद सम्वादों के उस अंश में भी है जो संस्कृत नाटक-ग्रंथों से लिये गये हैं।

सच तो यह है कि काव्य के अन्य स्थलों की अपेक्षा सम्वाद में कवि की अभिरुचि और उसके व्यक्तित्व का अच्छा प्रकाशन होता है। केशव के सम्वादों के पीछे एक पण्डित राजकवि का वाग्वैदग्ध छिपा हुआ है, उनमें अहंता की मात्रा भी कम नहीं है, यद्यपि उनके पात्र शिष्टाचार की चीण ओट में इसे छिपाने का प्रयत्न करते हैं। तुलसी प्रकृत कवि हैं, भक्त हैं, सज्जन हैं, वक्रोक्ति और व्यंग उन्हें पग-पग पर नहीं सूझते, वे अपने पात्रों के सम्वादों को उस प्रकार व्यक्तित्व और वाग्चातुर्य प्रदान नहीं कर सके, जैसा केशव ने किया है। इसी से उनके सम्वाद रंगमंच के उपयोग के नहीं हैं। उन्होंने सारी कथा और राम की तरफ़ के (नहीं, विरोधी दल के भी) सारे पात्रों में रामभक्ति की स्थापना कर भक्ति का सिर ऊँचा उठाया है, परन्तु उसका फल यह हुआ है उनके सम्वाद उपदेशात्मक हो गये हैं और सम्वाद का उपदेश हो जाना उसकी सब से बड़ी हानि है।

८—रामचन्द्रिका में वर्णन

रामचन्द्रिका वर्णनों से भरी पड़ी है। ऐसा जान पड़ता है कि केशवदास को वर्णन-लेखन से अत्यन्त मोह था। यद्यपि राम-कथा में वर्णनों की काफ़ी गुञ्जाइश है और वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने अच्छे-अच्छे वर्णन स्थान-स्थान पर लिखे हैं, परन्तु वर्णनों की इतनी प्रचुरता के लिए जो रामचन्द्रिका में है, केशव के पास कोई उत्तर नहीं है। महाकाव्य में वर्णनों का विशेष स्थान होता है और साहित्य-दर्पण की महाकाव्य की परिभाषा—

'सर्गबद्धो महाकाव्यः, इत्यादि

में कितने ही प्रकार के वर्णनों का आदेश है। परन्तु केशवदास इतने ही वर्णनों से प्रसन्न नहीं है। उन्होंने अनेक नवीन-नवीन

वर्णनों को खोज निकाला है जिससे रामचन्द्रिका "महाकाव्य" की अपेक्षा वर्णनों का एक कोष ही हो गया है। नीचे हम रामचन्द्रिका के वर्णनों की 'प्रकाश' क्रम से सूची देते हैं—

प्रकाश १, सरयू-वर्णन, हाथी-वर्णन, बाग-वर्णन, अवधपुरी-वर्णन

—२, राजा दशरथ-वर्णन

—३, वन-वर्णन

—४, मुनि आश्रम-वर्णन

—५, स्वयंवर-वर्णन, सूर्योदय-वर्णन, राम का सूर्योदय-रूपक।

प्रकाश ६, बरात का आगमन वर्णन, शिष्टाचार रीति, जेवनार-वर्णन, पहकाचार-वर्णन, राम नखशिख-वर्णन, सीता-स्वरूप-वर्णन

प्रकाश ८, अवध-वर्णन

—९, पुत्र-धर्म-वर्णन, नारि-धर्म-वर्णन, विधवा-धर्म-वर्णन, वनगमन-वर्णन, सीता-मुख-वर्णन

—११, पंचवटी-वन-वर्णन, दण्डक-वर्णन, गोदावरी-वर्णन, सीता गान-वाद्य-वर्णन

—१२, राम-वियोग-प्रलाप, पम्पासर-वर्णन

—१३, वर्षा-वर्णन, शरद-वर्णन

—१४, समुद्र-वर्णन

—१५, शत्रु-सेना-वर्णन

—१७, १८, १९ युद्ध-वर्णन

—२०, त्रिवेणी-वर्णन, भरद्वाज वर्णन, ऋषि-आश्रम-वर्णन

—२१, दानविधान-वर्णन, सनाढ्योत्पत्ति-वर्णन

—२२, अवध प्रदेश वर्णन

—२३, राज्य-श्रीनिन्दा

—२४, रामविरक्ति और दुःखों का वर्णन।

—२५, जीवोद्धार यतन वर्णन।

—२८, रामराज्य वर्णन।

—२६, चौगान-वर्णन, अवध-वर्णन, शयनागार-वर्णन, राजमहल-वर्णन।

—३०, रंगमहल-वर्णन, संगीत-नृत्यवर्णन, प्रभात-वर्णन, जागरण-वर्णन, प्रातः-वर्णन, भोजन-वर्णन, वसन्त-वर्णन, चन्द्र वर्णन (पूर्णिमा)

—३१, सीता की दासियों का वर्णन (नखशिख)

—३२, बागवर्णन, कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता और कृत्रिम जलाशय-वर्णन, जलाशय-वर्णन, जलकेलि-वर्णन

—३५, अश्वमेध वर्णन

—३६, राजनीति धर्म-वर्णन

इन वर्णनों में से अधिकांश भूमि-भूषण-वर्णन (कविप्रिया-सातवाँ प्रकाश) और राज्यश्री भूषण-वर्णन (कविप्रिया आठवाँ प्रकाश के अन्तर्गत आ जाते हैं। शेष का सम्बन्ध शृंगार, धर्म-नीति और राजनीति से है। पिछले दो के सम्बन्ध में हम देख सकते हैं कि केशव ने कविप्रिया की मान्यताओं को कहाँ तक अपनाया है। शृङ्गार के अन्तर्गत जो वर्णन आते हैं वे हैं राम-नखशिख-वर्णन, सीता-स्वरूप-वर्णन, सीता-मुख-वर्णन (प्रकाश, १२, १३), हनुमान द्वारा राम का विरह वर्णन, मुद्रिका, सीता की वियोग-दशा आदि, दासियों का शृङ्गार (प्रकाश ३१)। इसके अतिरिक्त प्रकाश ११ के छं०२८—३८ संयोग-शृङ्गार के वर्णन के अन्तर्गत आ सकते हैं। धर्मनीति-सम्बन्धी-वर्णन हैं—पुत्रधर्म, नारिधर्म, विधवाधर्म, दयाविधान, रामविरक्त और दुखों का वर्णन एवं जीवोद्धार रामनाम-महात्म्य। राज-नीति सम्बन्धी केवल दो ही स्थल हैं राजभक्ति-निंदा और राज-

नीति-वर्णन। शृंगार-सम्बन्धी वर्णनों में विशेष रसिकप्रिया की मान्यताओं को लेकर ही चल रहे हैं। धर्मनीति और राज-नीति मौलिक है, परन्तु विशेष महत्वपूर्ण नहीं। संख्या और विस्तार में ये वर्णन बहुत कम हैं। अतः स्पष्ट है कि रामचंद्रिका को हम महाकाव्य के मापदण्ड पर नहीं नाप सकते। उसे हमें केशव की अपनी काव्य-सम्बन्धी मान्यताओं के मापदंड पर ही नापना होगा जो कविप्रिया और रसिकप्रिया का विषय है।

नीचे हम कविप्रिया की कुछ मान्यताओं और रामन्द्रिका से तुलना करेंगे—

(१) सीता-वर्णन के सम्बन्ध में 'कविप्रिया' का मत है—

जल पर हय गय जलज तट महाकुण्ड मुनिवास
स्नान दान पावन नहीं बरनिय केशवदास
(सातवाँ प्रकाश, २८)

परन्तु रामचंद्रिका के अन्तर्गत सरजू-वर्णन इस प्रकार है—

अति निपट कुटिल गति यदपि आप
तनु दत्त शुद्धगत छुवत आप
कछु आपुन अध अधगति चलंति
फल पतितन कहँ ऊरध फलंति
मदमत्त यदपि मातङ्ग सङ्ग
अति तदपि पतित पावन तरङ्ग
बदु न्हाय न्हाय जेहि जल सनेह
सब जत स्वर्ग सूकर सदेह

यहाँ कवि का स्पष्ट लक्ष्य है विरोधाभास अलंकार, जिसके लिये उसे श्लेष का प्रयोग करना पड़ा है।

गजवर्णन के सम्बन्ध में कविप्रिया कहती है—

मत्त, महाउत हाथ में, मंदचलनि, चलकर्ण
मुक्तामय, इस कुम्भ शुभ सुन्दर, शूर, सुवर्ण
(प्रभाव ८, छं० २७)

रामचन्द्रिका में—

जहँ तहँ महा मददत्त
वर वारन वार न दलदत्त
अङ्ग अङ्ग चरचे अति चंदन
मुंडन मुरके देखिय वंदन

यहाँ यमक का आग्रह स्पष्ट है

वारन = हाथ
वारन = वार + न = देर नहीं लगती

दीह दीह-दिग्गज की केशव मनहुँ कुमार
दीन्हे राजा दशरथहिं दिग्पालन उपहार

यहाँ उत्प्रेक्षा लक्ष्य है।

(३) नगर-वर्णन के लिए कविप्रिया में यह सिद्धांत है—

खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी, कूप, तड़ाग
वरनारि, असती, सती, वरनहु नगर सभाग
(प्रभाव ७, छंद ४)

रामचन्द्रिका का नगर-वर्णन दूसरे ही प्रकार है—

ऊँचे अवास
बहु ध्वज प्रकास
सोभा विलास
सोभै प्रकास
अति सुन्दर अति साधु
फिर न रहत पल आधु

परम तपोमय मानि
दंड धारिणी जानि

शुभ द्रोण गिरिगण शिखर ऊपर उदति ओषधि सी गनौ
बहु वायु वश वारिद वहोरहि अरुझि दामिनि दुति मनो
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलत भली

स्पष्ट है कि केशव अपने ही सिद्धान्तों पर नहीं चल रहे। वास्तव में काव्यशास्त्र-ज्ञान एक बात है, कवि की अभिरुचि दूसरी बात है। केशव की अभिरुचि ही उनकी कविता को रूप देती है, काव्य-शास्त्र के सिद्धांत नहीं। वर्णन में उन्होंने अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है—ये अलंकार हैं—१ उत्प्रेक्षा, २ श्लेष, ३ विरोधाभास, ४ संदेह, ५ परिसंख्या। 'स्वभावोक्ति' बहुत कम है। वास्तव में वर्णन का गुण तो स्वभावोक्ति है अर्थात् जैसा प्रत्यक्ष हो, वैसा ही वर्णित हो। केशव तो प्रस्तुत के ऊपर अप्रस्तुत का कुछ इस प्रकार आरोप करते हैं कि प्रस्तुत का रूप ढक ही नहीं जाता, बिगड़ भी जाता है।

प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में हम अलग विचार कर रहे हैं। यहाँ अन्य वर्णनों को ही लेते हैं। इनमें प्रमुख हैं राम का नख-शिख वर्णन (छठा प्रकाश), सीता-मुख-वर्णन (नवाँ प्रकाश), अवध-प्रवेश (आठवाँ प्रकाश), मुद्रिका-वर्णन (१३वाँ प्रकाश), अग्निप्रवेश (२०वाँ प्रकाश), शिखनख (३१वाँ प्रकाश)। इन उत्कृष्ट वर्णनों का ही हम विश्लेषण करेंगे।

केशव का अवध-प्रवेश-वर्णन इस प्रकार है—

ऊँची बहुवर्ण पताक लसैं। मानों पुरदीपति सी दरसैं
देवीगण व्योम विमान लसैं। सोमैं तिनको मुख अंचल सो

× × ×

अति सुभ बीथी रज परिहरे। गलबत्र लीनी पुष्पन भरे
दुहु दिसि दीसैं सुबरन भये। कलस बिराजैं मनिगन नये
घर-घर घंटन के रव बाजैं। बिच बिच शंख जु झालें साजैं
परह पखाउज। आउझ सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं

× × ×

भोर भये गज पर चढ़े श्री रघुनाथ विचारि
तिनहिं देखि बरनत नये नगर नागरी नारि
तमपुंज लियो गहि भानु मनों। गिरि अंजन ऊपर सोम मनों
मनमत्थ विराजत सोम तरे। जनु भानत दानहिं लोभ धरे
आनंद प्रकासी सब पुरवासी करत हैं दौरादौरी
आरती उतारैं सरवसु वारैं अपनी २ पौरी
पढ़ि मंत्र अशेषनि कर अभिषेकनि आशिष दैं सविशेसैं
कुंकुम करपूरनि गजमद चूरनि वर्षित वर्षा वैसे

ऐसे वर्णना में राजैश्वर्य ही विशेष रूप से प्रगट है। इससे कवि का विशेष परिचय था। परन्तु यहाँ भी वस्तुचित्र देने की अपेक्षा उत्प्रेक्षामाला ही गूँथी गई है। मुद्रिका-वर्णन और अग्नि-प्रवेश में सन्देह और परिसख्या की शृङ्खला बाँधी गई है। वास्तव में वर्णन करते समय केशव की कल्पना अत्यन्त उत्तेजित और असम्भव हो जाती है—वे अनोखे अप्रस्तुत उत्पन्न करते हैं, नहीं, उनकी झड़ी बाँध देते हैं। ऊपर हमने केशव का अवध-प्रवेश-वर्णन दिया है। उसे तुलसी के इस उदाहरण के सामने रखिये—

हने निसान पनव बरबाजे। भेरी सङ्ख धुनि हय गय गाजे
झांझि बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहि सहनाई
पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता
निज निज सुन्दर सदन सँवारे। हाट बाट चौदह पुर द्वारे
गली सकल अरगजाँ सिंचाई। जहँ तहँ चौकै चारु पुराई
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना

सकल पूगदल करहि रसाला। रोवे बकुल कदम्ब तमाला
लगे सुभग तरु पपसत धरनी। मनिमय आलवाल कल करनी
विविध भाँति मङ्गल कलस गृह गृह रचे सँवारि
सुर ब्रह्मादि रिझाहिं सब रघुबर पुरी निहारि

भूप भवन तेहिं अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा
मङ्गल सगुन मनोहर ताईं। रिधि सिधि सुख सम्पदा सुहाईं
जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए

— — —

मोद प्रमोद विवस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता
रामदरस हित अति अनुरागी। परिछनि साजु सजन सब लागीं
विविध विधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला
अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मञ्जुल मंडवी तुलसि बिराजा
छुइ पुरए घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड बनाए

— — —

कनकथाल भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिस मात
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात
(बालकांड, ३४३-३४७)

केशव में दुलहा राम के सौन्दर्य का चित्रण इस प्रकार किया है—"श्री रघुनाथ जी के सिर पर गंगाजल की पगड़ी है।[1] उनकी भौहैं सिञ्चित, टेढ़ी, सुन्दर, निर्मल, सचिक्कण तथा उचित और बराबर लम्बाई को लम्बी-चौड़ी हैं।[2] उनके कानों में मकराकृति कुण्डल हैं।[3] उनके मुख की शोभा एक अत्यन्त निर्मल

१ गङ्गाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ

२ कछु भृकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल सुमिल सुदेश

३ श्रवण मकर-कुण्डल

पुष्करणी है।[४] और दांतों की कांति उज्ज्वल शोभा देती है।[५] उनका गला शंखाकृति का है।[६] उनकी भुजाएँ देखकर देवता और असुरगण दोनों को लज्जा आती है।[७] उनके वक्षस्थल पर भृगु-चिन्ह है।[८] वे मोतियों की दो लड़ी की माला पहने हैं।[९] उनके पैरों में जूती है जिसपर रेशम में गुँथी हुई हीरों की अति स्वच्छ पंक्ति शोभित है।[१०]" इसके समकक्ष तुलसी का यह चित्र उपस्थित किया जा सकता है—

स्याम सरीरु सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन
जावक जुत पदकमल सुहाए। मुनि मन मधुर रहत जिन्ह छाए
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर
पीत जनेउ महाछवि देहीं। कर मुद्रिका चोरि चित लेहीं
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे
पिअर उपरना काखा सोती। दुहुँ आचरहिं लगे मनि मोती
नयन कमल कल कुण्डल काना। बदनु सकल सौन्दर्ज सिवाना
सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे
(बाल० ३०७)

तुलसी ने राम में देवभाव रखा है, इसलिए यहाँ "नखशिख"

४ अति बदन शोभ सरसी सुरंग।
५ सोभियति दंतरुचि शुभ्र।
६ ग्रीवा श्री रघुनाथ की लागति कछु परवैस।
७ सोभन दीरघ बाहु विराजत। देव सिहात अदेवन लाजत।
८ उर में भृगुलात।
९ शोभ न मोतिन की दुलरी सुदेश।
गज मोतिन की माला की शाल।
१० श्याम दुकूल पग लाल लसै दुति यों तनकी।
प्रात अति सेत सु हीरन की अवली।

का वर्णन है, परन्तु केशव, राम को नायक मानकर चले हैं। अतः वे "शिखनख" लिख रहे हैं। तुलसी राम के जावक-युत चरणों का वर्णन करते हुए, एकदम भक्तिभावना की ओर मुड़ते हैं—'मुनि मन मधुप रहत जिन छाये।' परन्तु राजदरबार के विवादों से परिचित केशवदास राम के पैर की जड़ाऊ रेशमी जूती में ही उलझ कर रह जाते हैं। तुलसी के सारे चित्रण में प्रेमांकन की ही प्रधानता है—"मनाहि देई", "चोरि चितु लेई", 'कटिसूत्र मनोहर'—परन्तु केशवदास इस प्रकार प्रसाद-पूर्ण वर्णन की ओर नहीं जाते। उन्होंने प्रत्येक अंग और आभूषण के साथ अत्यन्त उत्कृष्ट उपमाएँ—उत्प्रेक्षाएँ दी हैं, जैसे वे राम के जूती पहने पैरों को त्रिवेणी बना देते हैं—

> स्याम दुऊ पग लाल लसै दुति यों तलकी
> मानहु सेवति जोति गिरा जमुना जल की
> पायजति अति सेत सुहीरन की अवली
> देवनदीन मानहु सेवन भाँति भली

(दोनों पैरों के ऊपरी भाग तो श्याम रंग के हैं और तलवों की आभा लाल है। ऐसा मालूम होता है मानों सरस्वती की ज्योति जमुना जल की ज्योति का सेवन कर रही है—जमुना में सरस्वती आ मिली है। रेशम में गुँथी हुई हीरों की पंक्ति सफेद पंक्ति भी है। यह संयोग ऐसा जान पड़ता है मानों गंगाजल के कणिका भी इस संगम का सेवन भलीभाँति कर रहे हैं—गंगा भी यहाँ मौजूद है)

इसी तरह जहाँ तुलसी 'कल कुण्डल काना' कह कर ही काम निकाल लेते हैं, वहाँ केशवदास उत्प्रेक्षा का प्रयोग किए बिना नहीं रह सकते—"श्रवण मकर कुण्डल लसत मुख सुखमा एकत्र

शशि समीप सोहत मनो श्रवण मकर नक्षत्र

उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते हैं—ऐसा मालूम होता है मानो मकर राशि के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा शोभा दे रहा है। इस प्रकार की सूझ भले ही उनके 'ज्योतिषज्ञान की सूचक हो, परन्तु उससे काव्य सामान्य ज्ञान के धरातल से बहुत ऊपर उठ कर वर्ग विशेष की वस्तु हो जाता है। वास्तव में केशव के काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि उनके काव्य का एक बड़ा अंश साधारण ज्ञान और कल्पना वाले व्यक्ति के काम की चीज़ नहीं रह जाता। उदाहरण के लिए, भ्रकुटि-वर्णन देखिये। भ्रकुटि का गुण टेढ़ा होना है, परन्तु उसके। टेढ़ेपन को लेकर इस "विरोधाभास" के गढ़ने की क्या आवश्यकता थी—

जदपि भ्रकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत ज्योति
तदपि सुरासुर नरन की निरखि शुद्ध गति होति

यहाँ व्यंजना यह है कि भगवान रामचन्द्र के क्रोध से भी सुर, असुर और मनुष्य सदगति को प्राप्त होते हैं—मृत्यु को वरण कर साकेत धाम जाते हैं। परन्तु चाहे बात किसी हद तक ऊँची है परन्तु साधारण मनीषा इसे शीघ्र समझ नहीं पाती। कवि को पग-पग पर उत्प्रेक्षा और विरोधाभास का आग्रह क्यों हो! क्यों न वह साधारण भाव-प्रकाशन के धरातल पर चले? तुलसी में साधारण ज्ञान के सहारे काव्य को उठाने की कोशिश की गई है इसीसे वह तीन शताब्दियों से जनता का हृदय हार है। केशव पंडितों तक ही सीमित हैं। वह भी रसलाभ के लिए नहीं, पांडित्य-परीक्षा के लिए। कहा भी है—

जाको देन न चहै बिदाई
पूछै केशव की कविताई

केशव के वर्णनों में एक दोष यह भो है कि कवि कहीं भी संयत नहीं है। जहाँ उसे संयम से काम लेना ही श्रेयस्कर होता,

यहाँ भी वह उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा देता है। यह नहीं देखता कि इस बोमीके के चमत्कार से सहज सौन्दर्य या मनोविज्ञान की हानि होगी। अवसर सीता के अग्निप्रवेश का है। साधारण दृष्टि से यह अवसर अत्यन्त कारुणिक है। सीता ने क्या क्या दुख नहीं उठाये, फिर भी उन पर संदेह किया जा रहा है। सारी वानरसेना और लक्ष्मण के लिए यह दुःख और शोक का अवसर है। तुलसी ने इस बात को पहचाना है और अत्यन्त संक्षेप में इस दुःखपूर्ण परीक्षा का वर्णन किया है—

पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहि भय कछु तेही
जौं मन बच क्रम मम उर नाहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं
तौ कृसानु मब कर गति जाना। मोकहुँ होउ श्रीखंड समाना
श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली
जय कोसलेस महेस बंदित चरन अति रति निर्मली

× × ×

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्यश्रुति जग बिदित जो
जिमि छीर सागर इन्दिरा रामहि समर्पी आनि सो (लंका० १०९)

परन्तु केशव अग्नि में बैठी हुई सीता को देखकर उत्प्रेक्षाओं की झड़ी बाँध देते हैं—

कि सिंदूर शैलाग्र में सिद्ध कन्या। किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या
सरोजासना है मनो चारु वाणी। जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी
किधौं ओषधी वृन्द में रोहिणी सी। कि दिग्दाह में देखिये योगिनी सी
धरा पुत्र ज्यों स्वर्ण माला प्रकासे। किधौं ज्योति सी तत्तका योग भासे
आसावरी माणिकलुम्भ सोभै। अशोक-लग्ना वन देवता सी
पलाशमाला कुसुमावलि मध्ये। वसंत लक्ष्मी शुभ लक्षणा सी
आरक्तपत्रा शुभ चित्र पुत्री। मनो विराजै अति चारुवेशा
संपूर्ण सिंदूर प्रभा बसै धौं। गणेश भालस्थल चंद्र रेखा

है मणिदर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनहद अभीता
पुञ्ज प्रताप में कीरति सी तव तेजन में मनु सिद्ध विनीता
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता
त्यों अवलोकिय आनँदकंद हुतासन मध्य सवासन सीता
(प्रकाश, २०)

यह उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं कि झड़ी इस प्रकार है—

१—जैसे पिता की गोद में कोई पवित्राचारिणी कन्या हो
२—महादेव के नेत्र की पुतली
३—रणभूमि की चंडी
४—रत्न-सिंहासन में बैठी हुई इंद्राणी
५—अनुराग से रँगी हुई कोई रागिनी
६—सरस्वती के जलसमूह में कोई देवी
७—सरस्वती के जल में खिला कमल
८—कमल में कमलकंद
९—कमल के बीजकोष पर लक्ष्मीजी
१०—सिंदूर शैली से अग्रभाग में बैठी कोई सिद्ध कन्या
११—सूर्यमंडल में कमलिनी
१२—कमल पर बैठी सरस्वती

१३—जपा पुष्पों पर बैठी भवानी

१४—दिव्यौषधियों के समूह में रोहिणी

१५—चित्रदाह में कोई योगिनी

१६—मंगल-मण्डल में स्वर्णमाला

१७—तक्षक के फण पर मणि-ज्योति

१८—जैसे आसावरी रागिनी मानिक का कुम्भ लिए हो

१९—अशोक वृक्ष पर कोई वनदेवी बैठी हो

२०—वसंत श्री पलाशकुसुम के समूह में सुशोभित हो

२१—कोई चित्रपुतली बेलबूटों के मध्य सुन्दर ढङ्ग से सजाई गई हो

२२—सिंदूर की प्रभा में गणेश जी के मस्तक पर चन्द्रकला

२३—मणि दर्पण में किसी का प्रतिबिंब

२४—किसी निश्चल अनुरागी के हृदय की साक्षात् प्रीति

२५—प्रताप के ढेर में कीर्ति

२६—तपतेज में उत्तमा सिद्धि

२७—केशव के हृदय में रामभक्ति

इस उत्प्रेक्षा-माला से तो यही जान पड़ता है कि केशव के हृदय में रामभक्ति का किंचित मात्रा भी नहीं है, वे पांडित्य-प्रदर्शन में लगे हुए हैं और ऊहात्मक कल्पना-चित्रों का चलचित्र सामने उपस्थित कर रहे हैं। किसी भी चित्र को पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने दिया जाता—एक रंग चढ़ने नहीं पाता कि दूसरा रंग चढ़ जाता है। इस प्रकार के काव्यकौशल से काव्यांग की हानि हुई है, पुष्टि नहीं। वास्तव में यही अनवसर केशव की कला का महान् दोष है। महान कवि मर्मपूर्ण स्थलों और मनोवैज्ञानिक अवसरों को भली भांति जानते हैं और ऐसे ही अवसरों पर रसोद्रेक या सौन्दर्य-स्थापन या मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करने के लिए अलंकार का प्रयोग करते हैं। वहाँ तो अलंकार

कि सिंदूर शैलाग्र में सिद्ध कन्या। किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या
सरोजासना है मनो चारु वाणी। जपा पुष्प के बीच बैठी भवानी
किधौं ओषधी वृन्द में रोहिणी सी। कि दिग्दाह में देखिये योगिनी सी
धरा पुत्र ज्यों स्वर्ण माला प्रकासै। किधौं ज्योति सी तत्त्का योग भासै
आसावरी माणिकलुम्भ सोभै। अशोक-लग्ना वन देवता सी
पलाशमाला कुसुमावलि मध्ये। वसंत लक्ष्मी सुभ लक्षणा सी
आरक्तपत्रा सुभ चित्र पुत्री। मनो विराजै अति चारुवेषा
संपूर्ण सिंदूर प्रभा बसै धौं। गणेश भालस्थल चंद्र रेखा

है मणिदर्पण में प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनहद अभीता
पुञ्ज प्रताप में कीरति सी तव तेजन में मनु सिद्ध विनीता
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता
त्यों अवलोकिय आनँदकंद हुतासन मध्य सवासन सीता
(प्रकाश, २०)

यह उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं कि झड़ी इस प्रकार है—

१—जैसे पिता की गोद में कोई पवित्राचारिणी कन्या हो
२—महादेव के नेत्र की पुतली
३—रणभूमि की चंडी
४—रत्न-सिंहासन में बैठी हुई इंद्राणी
५—अनुराग से रँगी हुई कोई रागिनी
६—सरस्वती के जलसमूह में कोई देवी
७—सरस्वती के जल में खिला कमल
८—कमल में कमलकंद
९—कमल के बीजकोष पर लक्ष्मीजी
१०—सिंदूर शैली से अग्रभाग में बैठी कोई सिद्ध कन्या
११—सूर्यमंडल में कमलिनी
१२—कमल पर बैठी सरस्वती

१३—जपा पुष्पों पर बैठी भवानी
१४—दिव्यौषधियों के समूह में रोहिणी
१५—पित्रदाह में कोई योगिनी
१६—मंगल-मण्डल में स्वर्णमाला
१७—तक्षक के फण पर मणि-ज्योति
१८—जैसे आसावरी रागिनी मानिक का कुम्भ लिए हो
१९—अशोक वृक्ष पर कोई वनदेवी बैठी हो
२०—वसंत श्री पलाशकुसुम के समूह में सुशोभित हो
२१—कोई चित्रपुतली बेलबूटों के मध्य सुन्दर ढङ्ग से सजाई गई हो
२२—सिंदूर की प्रभा में गणेश जी के भलक पर चन्द्रकला
२३—मणि दर्पण में किसी का प्रतिबिंब
२४—किसी निश्चल अनुरागी के हृदय की साक्षात् प्रीति
२५—प्रताप के ढेर में कीर्ति
२६—तपतेज में उत्तमा सिद्धि
२७—केशव के हृदय में रामभक्ति

इस उत्प्रेक्षा-माला से तो यही जान पड़ता है कि केशव के हृदय में रामभक्ति की किंचित मात्रा भी नहीं है, वे पांडित्य-प्रदर्शन में लगे हुए हैं और ऊहात्मक कल्पना-चित्रों का चलचित्र सामने उपस्थित कर रहे हैं। किसी भी चित्र को पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने दिया जाता—एक रंग उतरने नहीं पाता कि दूसरा रंग चढ़ जाता है। इस प्रकार के काव्यकौशल से काव्यांश की हानि हुई है, वृद्धि नहीं। वास्तव में यही असंयम केशव की कला का महान् दोष है। महान कवि रसपूर्ण स्थलों और मनोवैज्ञानिक अवसरों को भली भांति जानते हैं और ऐसे ही अवसरों पर रसोद्रेक या सौन्दर्य-स्थापन या मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करने के लिए अलंकार का प्रयोग करते हैं। यहाँ तो अलंकार

ही लक्ष्य हो गये हैं—कवि पाठकों को चकित, चमत्कृत कर देना चाहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि केशव के काव्य में वर्णनों की भरमार है, परन्तु मूल रूप से सब एक ही प्रकार के हैं। सब में उनके पांडित्य की छाप है। सब में उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकार के लिए उनका आग्रह है। वर्णनों में उन्होंने रस का जरा भी सम्बन्ध नहीं रखा है, यद्यपि उनसे उनका लोकनिरीक्षण भी प्रगट होता है, परन्तु प्रधानरूप से तो वे ऊहा-कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। तुलसी के सारे रामचरितमानस में केवल एक स्थान पर (दे० चन्द्रोदयवर्णन, लंका कांड) हम ऊहाप्रधान उत्प्रेक्षा-मूलक काव्य को पाते हैं। केशव के पास इसके सिवा और है ही क्या ?

इन वर्णनों में अधिकांश ऐसे हैं जिनका परिचय केशव को अपने आश्रयदाता के वातावरण और उनकी संगति से हुआ होगा, जैसे चौगान, प्रकाश ३२ के समस्त वर्णन (बाग कृत्रिम पर्वत, कृत्रिम सरिता, कृत्रिम जलाशय, जलकेलि)। केशव ने राम के ऐश्वर्य को ओरछा राजमहल के ऐश्वर्य पर खड़ा किया है। अतः उन स्थलों पर उनके काव्य का मूल रूप ही हमें मिलता है। रामकथा में इन वर्णनों की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। सच तो यह है कि कथाकाव्य में वर्णन और कथा में एक विशेष अनुपात होना चाहिये। वह अनुपात केशव की रामचन्द्रिका में है ही नहीं। वहाँ रामकथा तो बीसवें प्रकाश तक ही चलती है और वर्णन उनतालीस प्रकाश तक चलते हैं। इन पहले २० प्रकाशों में भी कथा का अनुपात पाँचवें भाग तक भी नहीं पहुँचता। अधिकांश विस्तार सम्वाद और वर्णन में ही समाप्त हो जाता है।

(९) रामचन्द्रिका में धर्मनीति

रामचन्द्रिका के २४, २५ वें प्रकाशों में धर्म और अध्यात्म

का वर्णन है। इसके अतिरिक्त २१, २६, २७, ३३ और ३४वें प्रकाशों से केशव की धर्म-सम्बन्धी धारणा का निर्माण हो सकता है।

चौबीसवें-पचीसवें प्रकाश में रामविरक्ति और विश्वामित्र के प्रबोध में जीव के दुःखों और उनके परिहार का विस्तृत वर्णन है। केशव की सम्मति में यह संसार ही दुःखमय है, जन्म और मरण दुःखमय है, निरन्तर जीवन-साधन भी कष्टमय है। बचपन, जवानी और वृद्धावस्था तीनों में दुःख है—

× × जग महँ सुक्ख न गुनिये
मरणहिं जीव न तजहीं। मरि मरि जन्म न भजहीं
उदरनि जीव परत हैं। बहु दुख सों निकरत हैं
अंतहु पीर अनत ही। तन उपचार सहित ही
पोच भली न कछु त्रिय जानै। लै सब वस्त्रन आनन आनै
शैशव ते कछु होत बड़ेई। खेलत हैं ते अयान चढ़ेई
हैं पितु मातन तें दुख भारे। श्रीगुरु तें अति होत दुखारे
भूख न प्यास न नींद न जोवैं। खेलन को बहु भाँतिन रोवैं
जारति चित्त चिता दुचिताई। दीह त्वचा अहि कोप चबाई
काल समुद्र झकोरनि झूल्यो। यौवन चोर महामद भूल्यो
धूम से नीलनि चोलनि सोहै। जाइ छुई न विलोकत मोहै
पावक पापशिखा बड़ वारी। जारत है नर को नरनारी
हिये न प्रभा सँसरी सी। कर्दम काम कछू परसी सी
कामिनि काम की डोरि भ्रसी सी। मीन मनुष्यन की वनसी सी

खैंचत लोभ दसों दिसि को, गहि मोह महा इत फाँसहि डारे
ऊँचे ते गर्व गिरावत; क्रोधहु जीवहि छूहर लावत भारे
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों केशव, मारत कामहु वाण निवारे
मारत पाँच करे पँचकूटहिं, कासों कहैं जगजीव विचारे

कँपै उर बानि डगै बर डीठि, त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली
नवै नव ग्रीव थकै गति केशव, बालक तें सँगही संग खेली
हिये सब आधिन व्याधिन संग, जरा जब आवै ज्वरा की सहेली
भगै सब देह दशा, जिय साथ, रहै दुरि दौरि दुराशा अकेली

(इस संसार में कोई भी सुख नहीं है। यहाँ जीवों का जन्म-मरण ही नहीं छूटता। जीव गर्भ में आते हैं और बड़े कष्ट से उस गर्भ के बाहर होते हैं। तब शरीर-सम्बन्धी व्यवहारों में पड़कर अन्त में अनेक कष्ट सहते हैं। बचपन में जीव भली-बुरी वस्तु को नहीं जानता, सब वस्तुएँ मुख में डाल लेता है। कुछ बड़ा होते ही अज्ञानवश केवल खेल में ही लगा रहता है। पिता-माता और गुरु से अनेक दुःख पाता है। भूख, घाम और नींद को कुछ नहीं गिनता, केवल खेल के लिए रोता है। धुएँ के समान नीलांबर से सुशोभित परनारी-रूपी अग्नि पाप की बड़ी-बड़ी लपटें वाली होने के कारण युवावस्था में नर को जलाया करती है, लोक-मर्यादा के कारण उसे छू नहीं सकते। पर वह देखने से ही मूर्च्छित कर देती है। स्त्रियों के हृदय की कुटिलता ही वंशी के समान है, उनके हृदय की गुप्त कामेच्छा ही उस हँसिया में लगा हुआ मांस का चारा है और स्त्री का समस्त शरीर ही डोरी के समान है जिसे कामदेव शिकारी अपने हाथ से पकड़े हुए है। इसलिए स्त्री मनुष्य-रूपी मीनों को फँसाने के लिए पूर्णतयः वंशी के समान है। इधर महामोह की फाँसी लगाए लोभ देव मनुष्य को दशों दिशाएँ में खेंचता है। गर्व उसे ऊँची पदवी से गिरा देता है और क्रोध उसे जलाता है। फिर कोढ़ की खाज की तरह कामदेव के बाण उसे पीड़ित करते हैं। लुटेरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व उसे मारते हैं, तो जीव इस दुःख को किससे कहे ? वृद्धावस्था में हृदय से कंठ में आती हुई वाणी काँपने लगती है, दृष्टि भी डगमगा जाती है, शरीर की त्वचा ढीली पड़कर सिकुड़ जाती

है और बुद्धि-रूपी लता भी संकुचित हो जाती है। गरदन झुकने लगती है। चलने की शक्ति जाती रहती है। जरा के अंगों की स्वाभाविक शक्ति मारी जाती है, जीने की दुराशा मात्र शेष रह जाती है।)

दुःख के कुछ विशेष कारण भी हैं—

१—स्त्री
२—अहंकार
३—लोभ
४—पापाचरण
५—तृष्णा

६—समय की प्रबलता के कारण शुभ विचार नष्ट हो जाते और मनुष्य नाश की ओर दौड़ता है। जीव इन दुःखों में फँसा है, उसका उद्धार कैसे हो? वशिष्ठ इस प्रकार उपदेश करते हैं—

(१) जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिंब है। लोभ, मद, मोह, काम के वश में होकर अपना सत्यरूप भूल जाता है। उसे वेदविधि ढूँढना चाहिये और यत्नपूर्वक शास्त्र-सम्मत व्यवहार करे। राम के पूछने पर कि जीवन की दुराशा उसे स्वभावतः चक्कर देती रहती है, जीव क्या करे? वशिष्ठ बताते हैं, कि वासना दो प्रकार की होती हैं—शुभ, अशुभ। मनुष्य यत्न के साथ वासना को शुभ पंथ में लगावे, तो अपना ब्रह्म-पद पा सकता है (कर्मवाद)

(२) मुक्ति प्राप्त करने के ४ साधन हैं—साधु-संग, शम, संतोष, विचार। साधु वह है जो संसार में रहता हुआ भी निर्दोष है। शम का अर्थ है—विषय-वस्तु के सौन्दर्य को देखते हुए, बहुत समय तक स्पर्श करते हुए, बात करते हुए और सुनते हुए तथा भोग करते हुए भी किसी समय, किसी प्रकार उन विषयों

में लीन न हो (इन्द्रियों का गुण और कर्मों में निर्लिप्तता)। संतोष का अर्थ है सच्चा अनासक्तिभाव। मन में किसी वस्तु की अभिलाषा न हो, किसी वस्तु के मिलने पर सुखी और नष्ट होने पर दुखी न हो, मन को परमानन्द-स्वरूप-ईश्वर में लगाये रखे। विचार का अर्थ है—सत्यज्ञान, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, वहाँ से किस लिए आया हूँ ? जिस प्रकार अपने असली पद को प्राप्त हूँ, उसे खोजना मेरा परम धर्म है। और कौन मेरा हितू है, कौन अहितू है, इसको चित्त में भली भाँति जाने।

(ज्ञानवाद)

जीव अपने अहंवाद (या ममता) से बँधा हुआ है। इसी से वह मन, वचन और शरीर से कुत्सित कर्म करता है और अपने को उनका कर्ता मान कर दुखी होता है। वास्तव में जीव ही ईश है। उसमें "कर्तृत्व" नहीं होना चाहिये। अहंभाव के नाश से ही मुक्ति की प्राप्ति होगी—

आपन सों अवलोकिये, सब ही युक्त अयुक्त
अहंभाव मिटि जाय जो कौन बद्ध को मुक्त

तब उसकी स्थिति जीवन-मुक्त की होती है—

बाहर हूँ अति शुद्ध हिये हूँ। जाहि न लागत कर्म किये हूँ
बाहर मूढ़ सु अंतस मानो। ताकहँ जीवनमुक्त बखानो

जीवन-मुक्त का स्थाई भाव होता है—

जानि सबै गुण दोष न छंडै। जीवनमुक्तन के पद मंडै

(त्याग)

(३) परन्तु केशव भक्ति-वाद से भी अपरिचित नहीं हैं। वशिष्ठ राम-भक्ति का मूल स्वरूप जानते हैं—

जग जिनको मन तव चरणलीन। तन तिनको मृत्यु न करसि छीन

तेहि छनही छन दुख छीन होत। जिय करत समित आनँद उदोत

(भक्तिवाद)

(४) वे योग को एक महत्वपूर्ण साधन मानते हैं—

जो चाहैं जीवन अति अनंत। सो साधै प्राणायाम संत
शुभ पूरक कुम्भक मान जानि। अरु रेचकादि सुखदानि आनि
जो क्रमक्रम साधै साधु धीर। सो तुमहिं मिले याही शरीर

(योगवाद)

केशव पूजा-उपासना को भी एक स्वतन्त्र साधना के अन्तर्गत रखते हैं। पूजा की विधि क्या है, राम के सगुण रूप का ध्यान। परन्तु यह ध्यान किस प्रकार हो, यह कवि स्वयं शिव के मुख से कहलाता है—

पूजा यहै उर आनु। निर्काज करिये ध्यानु
यों पूजि घटिका एक। मनु किये याज अनेक
जिय जान यहई योग। सब धर्म कर्म प्रयोग
तेहि ते यही उर लाव। मन अनत कहुँ न चलाव
यह रूप पूजि प्रकास। तब भये हम से दास

(२५वां प्रकाश, ६२३-२३)

उपासक अन्य प्राकृत देवताओं को छोड़ दे, निष्कपट होकर राम का ध्यान करे, इस मानसिक अनन्य पूजा से शुभाशुभ वासनाएँ जल जाती हैं। जीव भक्तिरस को प्राप्त कर महाकर्ता, महात्यागी, महायोगी होकर ईश्वर में लीन हो जाता है—

यहि भाँति पूजा पूजि जीव जु भक्त परम कहाय
भव भक्ति रस भागीरथी महँ देइ दुखनि वहाय
पुनि महाकर्त्ता महात्यागी महायोगी होय
अति शुद्धभाव रमै रमापति पूजिहै सब कोय

(० ३५-३८)

केशव के अनुसार भक्ति-साधना के लिए घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है—

> कहि केशव योग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तन है
> मनु हाथ सदा जिनके, तिनको बन ही घर है घर ही बनु है
> (छं० [illegible])

अन्त में नाम ही एक मात्र मुक्ति का उपाय है—

> कहै नाम आधो सो आधो नसावै
> कहै नाम पूरो सो बैकुंठ पावै
> सुधारै दुहूँ लोक को वर्ण दोऊ
> हिये छद्म छाँड़ै कहै वर्ण कोऊ
> सुनावै सुनै साधु संगी कहावै। कहावै कहै पाप पुंजै नसावै
> जपावै जपै वासना जारि डारै। तजै छद्म को देव लोकै सिधारै
> (प्रकाश २६, छं० ४-११)

तुलसी ने भी इसी प्रकार कहा है –

> कलि में केवल नाम अधारा

स्पष्ट है कि केशव अपने समय के सभी प्रचलित अध्यात्मवादों को स्वीकार करते हुए भी अन्त में भक्तिवाद (मानसिक पूजा, अनन्य भाव से अनुरक्ति और नाम स्मरण) को ही श्रेय देते हैं। परन्तु उनको यह सिद्धान्त आध्यात्मिक आत्मानुभव के द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है, अतः इसमें वह बल नहीं है जो तुलसी के अध्यात्म में है। केशवदास—"प्राकृत कवि" ही रह गए हैं। रामचंद्रिका जैसी पुस्तक से अर्थसिद्धि किये बगैर जो न रह सके, वह प्राकृत कवि नहीं तो और क्या हैं ?—इक्कीसवें प्रकाश में सनाढ्यों की दैवी उत्पत्ति बताकर उन्हें दान देने का नियोजन किया गया है। इसी प्रकार ३३वें प्रकाश में ब्रह्मा सनाढ्यों को दान देने की बात कहते हैं। उस पर एक नया ही प्रसंग गढ़ लिया गया है।

केशव राम के उस रूप से परिचित हैं जिसे तुलसी उनके पहले ही स्थापित कर चुके थे—

जाके रूप न रेख गुण, जानत वेर न गाथ
रंगमहल रघुनाथ गे राजश्री के साथ
(२९वां प्रकाश, छं० ४५)

ग्रन्थ की अवतारणा और भूमिका से भी यही बात जान पड़ती है। ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीराम-वंदना है—

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण बतावै न बतावैं और उक्ति को। दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै, न. नेति नेति कहै, वेद छांडि आन युक्ति को॥ जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को। रूप देहि छणिमाहि, गुण देहि गरिमाहिं, भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को।

फिर

राम नाम, सत्यधाम
और नाम कौन काम

और

सोई परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमणि

वे प्रस्तावना में राम-भक्ति का संकल्प भी करते हैं—

रामचंद्रपद पालं, वृन्दारक वृन्दानि वंदनीयम्
केशवमति भूतनया लोचनं चंचरीकायते

और ग्रन्थ की समाप्ति पर पौराणिकों की भाँति फल भी दे देते हैं—

अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय
विदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय
लहै सुमुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहिं ताहि
कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचंद्र चन्द्रकाहि

जिस प्रकार तुलसी अपनी रामकथा को परिणति में करते हैं--

> रघुवंशमनि भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं
> कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं

परन्तु रामचरित मानस की भाँति रामचंद्रिका में भक्ति की व्याप्ति नहीं है—उसकी मात्रा, वास्तव में, बहुत न्यून है। केशव के सामने लक्ष्य साफ़ है—कवित्वशक्ति और पांडित्य का प्रदर्शन। इसी कारण उनके धर्मनीति और अध्यात्म के उपदेश संदेश के रूप में कथा में मिल नहीं सके हैं। वे जिस संकल्प को लेकर चले हैं, उसकी रक्षा उनसे नहीं हो सकी है।

आध्यात्मिक विचारों पर लिखते हुए कवि को जीव, ब्रह्म, माया, संसार आदि विषयक धारणाओं पर भी विचार होता है। केशव ने इन विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया है, परन्तु यहाँ-वहाँ तत्सम्बन्धी उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। इन्हें ही समेट कर हम इन विषयों पर इनके विचार निर्धारित कर सकते हैं।

१—ब्रह्म

केशव के मतानुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, जो रामरूप में अवतरित हुई है—

> सब जानि बूझियत मोहि राम,
> 　　सुनिए सो कहौं जग ब्रह्मनाम
> जिनके अशेष प्रतिबिंब जाल
> 　　तेइ जीव जाम जग में कृपाल

हम ऊपर बता चुके हैं कि केशव ने राम को ब्रह्म ही माना है।

२—जीव

ऊपर उद्धृत पद से पता लगता है कि केशव जीव को ब्रह्म का प्रतिबिंब मानते हैं।

३—माया

केशव ने कहीं भी माया का वर्णन नहीं किया है, न माया-सम्बन्धी विचार का ही कहीं प्रकाशन किया है। जान पड़ता है, माया-सिद्धांत उन्हें मान्य नहीं है।

४—जगत (नाम-रूप)

यह नाम-रूप जगत एक समस्या है—न झूठा है, न सच्चा है। पारमार्थिक दृष्टि से तो यह झूठ है, परन्तु लौकिक दृष्टि से सच्चा है या सच्चा लगता है—

> झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई
> काहू साँचे को कियो ताते साँचो सो लगत है

जब यह जग झूठा है, तो सच्चा क्यों लगता है—केशव कहते हैं, जो "सच्चा" है, जिसका अस्तित्व है, उसकी रचना "असत्य" झूठी कैसे होगी ? कर्ता सत्य है, तो कर्म भी सत्य होना चाहिये। केशव इसे सत्य ही 'ब्रह्म' की रचना बताते हैं, परन्तु इसकी क्षण-भंगुरता और इसके असत्य सुखों को देखकर वे इसे सत्य भी कहना नहीं चाहते। सचमुच, वे उलझन में पड़े हैं—

> तुम्हही जु रची रचना विचारि
> तेहि कौने भाँति समझौं मुरारि

तुलसीदास भी कभी इस प्रकार के असमंजस्य में पड़ गये थे जब विनयपत्रिका में उन्होंने लिखा था—

> माधव कहि न जाय का कहिये
> देखत तव रचना विचित्र अति सुनत मनहिं मन रहिए
>
> × × ×
>
> कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै
> तुलसिदास परिहरै तीन युग सो आपुन पहिचानै

जिस प्रकार तुलसी अपनी रामकथा की परिणति में कहते हैं—

> रघुवंसमनि भूपन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं
> कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम रामधाम सिधावहीं

परन्तु रामचरित मानस की भाँति रामचंद्रिका में भक्ति की व्याप्ति नहीं है—उसकी मात्रा, वास्तव में, बहुत न्यून है। केशव के सामने लक्ष्य साफ़ है—कवित्वशक्ति और पांडित्य का प्रदर्शन। इसी कारण उनके धर्मनीति और अध्यात्म के उपदेश संदेश के रूप में कथा में मिल नहीं सके हैं। वे जिस संकल्प को लेकर चले हैं, उसकी रक्षा उनसे नहीं हो सकी है।

आध्यात्मिक विचारों पर लिखते हुए कवि की जीव, ब्रह्म, माया, संसार आदि विषयक धारणाओं पर भी विचार होता है। केशव ने इन विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया है, परन्तु यहाँ-वहाँ तत्सम्बन्धी उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। इन्हें ही समेट कर हम इन विषयों पर इनके विचार निर्धारित कर सकते हैं।

१—ब्रह्म

केशव के मतानुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, जो रामरूप में अवतरित हुई है—

> सब जानि बूझियत मोहिं राम,
> सुनिए सो कहौं जग ब्रह्मनाम
> जिनके अशेष प्रतिबिंब जाल
> तेइ जीव जाम जग में कृपाल

हम ऊपर बता चुके हैं कि केशव ने राम को ब्रह्म ही माना है।

२—जीव

ऊपर उद्धृत पद से पता लगता है कि केशव जीव को ब्रह्म का प्रतिबिंब मानते हैं।

३—माया

केशव ने कहीं भी माया का वर्णन नहीं किया है, न माया-सम्बन्धी विचार का ही कहीं प्रकाशन किया है। जान पड़ता है, माया-सिद्धांत उन्हें मान्य नहीं है।

४—जगत (नाम-रूप)

यह नाम-रूप जगत एक समस्या है—न झूठा है, न सच्चा है। पारमार्थिक दृष्टि से तो यह झूठ है, परन्तु लौकिक दृष्टि से सच्चा है या सच्चा लगता है—

झूठो है रे झूठौ जग राम की दोहाई
काहू साँचे को कियो ताते साँचो सो लगत है

जब यह जग झूठा है, तो सच्चा क्यों लगता है—केशव कहते हैं, जो "सच्चा" है, जिसका अस्तित्व है, उसकी रचना "असत्य" झूठी कैसे होगी ? कर्ता सत्य है, तो कर्म भी सत्य होना चाहिये। केशव इसे सत्य ही 'ब्रह्म' की रचना बताते हैं, परन्तु इसकी क्षण-भंगुरता और इसके असत्य सुखों को देखकर वे इसे सत्य भी कहना नहीं चाहते। सचमुच, वे उलझन में पड़े हैं—

तुम्हही जु रची रचना विचारि
तेहि कौनै भाँति समझौं मुरारि

तुलसीदास भी कभी इस प्रकार के असमंजस्य में पड़ गये थे जब विनयपत्रिका में उन्होंने लिखा था—

माधव कहि न जाय का कहिये
देखत तव रचना विचित्र अति सुनत मनहिं मन रहिए

× × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै
तुलसिदास परिहरे तीन युग सो आपुन पहिचानै

(१) यह 'जगत' सत्य है।

(२) यह 'जगत' झूठ है।

(३) यह जगत झूठ भी है, सत्य भी है।

तुलसी को ये तीनों मत मान्य नहीं हैं, वह 'अनिर्वचनीयवाद' में समाप्त करते हैं—"जैसा है वैसा है, हम नहीं जान सकते कैसा है, जान भी सकें तो बता तो सकते नहीं।" केशवदास ने भी उनकी भाँति इन तीनों झंझटों से बचने का एक तर्क सोच लिया—"यह जगत झूठ है, सत्य नहीं है, परन्तु यह सच्चा-सा लगता है।" कदाचित् वे यहाँ भी वह "प्रतिबिंबवाद" स्थापित कर रहे हैं जो उन्होंने जीव-ब्रह्म के सम्बन्ध में स्थापित किया है। प्रतिबिंब झूठ नहीं होता, परन्तु वह वास्तविक वस्तु न होकर उसका प्रतिरूप-मात्र होने के कारण झूठ ही कहा जायगा। इस प्रकार केशव द्वैतवादी नहीं ठहरते, उन्हें पूरा-पूरा अद्वैतवादी भी नहीं कह सकते, उन्हें "प्रतिबिंबवादी" कहा जा सकता है, जो सिद्धांत अद्वैतवाद के बहुत क़रीब है। इस सिद्धांत के द्वारा वे माया की मध्यस्थता के जाल से छूट गये हैं।

केशवदास ने 'जगत' को ही 'संसार' माना है। यह 'जगत' (जग) मन के हाथ है—

> जग को कारन सब मन
> मन को जीत अजीत

यह सारे "प्रपञ्च" झूठ हैं, परन्तु सच लग रहे हैं—कैसे, मन के कारण न! अद्वैतमत के मूल-प्रवर्त्तक, शंकराचार्य के गुरु-गुरु श्री गौड़पादाचार्य भी इसी तरह कहते हैं—

> मनोदृश्यमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः
> मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते।

(यह जितना द्वैत है, मन का ही दृश्य है, परमार्थतः तो अद्वैत

हो है, क्योंकि मन के मननशून्य हो जाने पर अद्वैत की उपलब्धि नहीं होती।)

१०—रामचंद्रिका में राजनीति

केशव ने अपने सामने राजाराम का दृष्टिकोण रखा है, कुछ इसलिए, कुछ उनके दरबार से संबन्धित होने के कारण रामचंद्रिका में राजनीति का विशद वर्णन है। उसके कई रूप हैं, (१) वह राजव्यवहार और राजकीय शिष्टाचार के रूप में प्रगट हुआ है। (२) रामराज्य के आदर्श वर्णन में (३) स्वयं राम के व्यवहार में। (४) रामचन्द्र के राजनीति-उपदेश में।

३६वें प्रकाश में रामकृत राजनीति का उपदेश इस प्रकार है—

बोलिये न झूठ ईठि मूढ़ पै न कीजिये
दीजिये जु वस्तु हाथ चूलिहू न लीजिये
नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को
यत्रतत्र जाहु पै पत्याहु जौ अनिज को
जुवा न खेलिये कहूँ, जुवा वेद न रच्छिये
अमित्र भूमि मांहि जै अभच्छ भच्छ भच्छिये
करौ न मन्त्र मूढ़ सों न गूढ़ मन्त्र खोलिये
सुपुत्र होहु जै हठी मठीन न सों बोलिये
वृथा न पीड़िये प्रजादि पुत्र मान पारिये
असाधु साधु बूझि के यथापराध मारिये
कुदेवदेव नारि को न बाल वित्त लीजिये
विरोध विप्र वंश सों सु स्वप्नहू न कीजिये

परद्रव्य को तौ विष प्राय लेखो
परस्त्रीन को ज्यों गुरुस्त्रीन देखो
तजौ काम क्रोधौ महामोह लोभो
तजौ गर्व को सर्वदा चित्त छोभौ

यहौ संग्रहौ निग्रहौ युद्ध योद्धा। करो साधु संसर्ग जो बुद्धि बोद्धा

हित् होय जे देई जो धर्म शिक्षा। अधर्मीन को जेहु जे याक भिक्षा

कृतघ्नी कुवाही परस्त्री विहारी
करौ विप्र लोभी न धर्माधिकारी
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजे
द्विजातीन को आपुही दान दीजे

तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै
कैसुहुँ ताकहँ शत्रुन मित्रसु केशवदास उदास न बाधै
शत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सुतासु परेजु उदास कै जोवै
विग्रह, संधिनि, दाननि सिन्धु लौं लै चहुँ ओरनमि तो सुख सोवै

राजश्री वश कैसहूँ, होहु न उर अवदात
जैसे तैसे आपु वश ताकहँ कीजै तात

(झूठ न बोलना, मूर्ख से मित्रता न करना, जो वस्तु किसी को दे देना, फिर भूल कर न लेना। किसी से स्नेह करके फिर उसे तोड़ना मत, मन्त्री और मित्र को दुख न देना। देशांतर में जाने पर शत्रु का विश्वास न करना। जुआ मत खेलना। वेद-वचन की रक्षा करना। शत्रु देश में जाकर अनजानी वस्तु न खाना। मूढ़ से सलाह मत लो और अपना गूढ़ तात्पर्य किसी पर प्रकट मत करो। हठ न करना और मठधारियों से छेड़छाड़ मत करना। वृथा प्रजा को मत सताना उसे पुत्रवत पालना। दोषी समझ कर जैसा अपराध हो, वैसा दंड देना। ब्राह्मण, देवता, स्त्री और बालक का धन न लेना और ब्राह्मणवंश से स्वप्न में भी विरोध न करना।

परधन को विष ही समझो। परस्त्री को मातावत् मानो। काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व और चित्तक्षोभ को सदा त्यागो। यश-संग्रह करो, युद्ध में शत्रु को दमन करो। ज्ञानदाता साधुओं की संगति करो। जो धर्मयुक्त शिक्षा दे, उसे ही हितैषी समझो

और अधर्मियों से बात मत करो। कृतघ्नी, झूठे, परस्त्रीगामी तथा लोभी ब्राह्मण को दान द्रव्य के बाँटने का अधिकारी मत बनाओ। संकल्प किए हुए द्रव्य की यत्नपूर्वक रक्षा करके ब्राह्मणों को अपने हाथ से दो। जो राजा क्रमशः अपने राज्य-सहित १३ राज्यों की सुव्यवस्था कर लेता है, उसको शत्रु, मित्र वा उदासीन कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता। शत्रु-राज्य से युद्ध करे, मित्र-राज्य से संधि करे और उदासीन राज्य से दान-नीति वरते। फिर भी किसी प्रकार राजवैभव के वश नहीं हो) इस दृष्टि से राम का राज आदर्श था यद्यपि केशव ने इस रामराज्य के वर्णन के समय श्लेष-पुष्ट-परिसंख्या और अतिशयोक्ति का सहारा लिया है, परंतु उनका आदर्श अवश्य ही स्पष्ट है कि—

"पृथ्वी धनधान्य से पूर्ण हो, न राजा-प्रजा में युद्ध हो, न विदेशी आक्रमण हो, गौ-अश्व-हाथी तेजवान और पुष्ट हों, प्रजा क्षमतावान और उद्योगी हो, साधु और विद्या-विलासी हो। राम-राज्य में सभी जन चिरंजीवी हों, संयोगी हों, सदा एकपत्नी-व्रती हों, आठों भोग भोगते हों, शीलवान, गुणवान और सुन्दर सुगंधयुक्त शरीर वाले हों। सब जने ब्रह्म-ज्ञानी, गुणवान तथा धर्म से चलने वाले हों। प्रजा दानादि कर्म कर सके, चित्त चिंता-रहित हो, चातुर्यपूर्ण हो, एक पुत्र-पौत्रादि के सुख देखें। सब माता-पिता के भक्त हों। प्रजा ज्ञानी हो, अशोक हो, धर्मी हो, यशी हो, सुखी हो, त्रिताप से रहित हो, वननाथ न हो। कोई भिक्षुक न हो। सब ऋजुगामी हो। कोई किसी की वृत्ति हरण न करे। लोग लज्जालु हों, द्यूत-व्यसनी न हों। जहाँ व्यभिचार और परपीड़ा का नाम नहीं हो। सब सम्मान युक्त रहें। मर्यादा-पूर्वक रहें। जन-धन-संपन्न नगर में लूट-खसोट नहीं हो। सर्वदा शांति का राज हो। अपवित्र कोई नहीं हो। गुण-संग्रह की ओर जनता की दृष्टि हो। सब कीर्तिवान हों।" (देखिये, प्रकाश २४)

इतना होते हुए भी राजा राज्य का उपयोग करते हुए करे, जिससे उनका मन विकृत न हो जाय। इस दृष्टिकोण को लेकर केशव ने २३वें प्रकाश में राम द्वारा राज्यश्री की निंदा कराई है (छंद १२—४०) और उपभोक्ता को सावधान किया है—

जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र
सुखवक्ता ई जानिये, संतत मंत्री मित्र ॥२८॥
सावधान ह्वै सेवै याहि। साँची देत परमपद ताहि
जितने नृप याके वश भये। पेलि स्वर्ग मगनावहिं गये

(राजश्री के प्रभाव से राजा का ऐसा स्वभाव हो जाता है जो जन परमहित की बात करता है वही परमशत्रु माना जाता है और चापलूस लोग सदा ही मन्त्री और मित्र माने जाते हैं। इसलिए सावधान होकर जो इस राजश्री का सेवक करता है उन्हें यह सच्ची मुक्ति देती है, असावधानी करनेवाले राजा नरक को प्राप्त हुए हैं।)

केशव राज-व्यवहार के बड़े मर्मज्ञ ज्ञाता थे। इसी से उन्होंने उसका बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

तुलसी की भाँति केशव ने भी राम-राज्य का चित्रण किया, परन्तु वे अलंकारों के विना तो बात ही नहीं कर सकते—"जिसके राज में आज कोई वर्ण संकर नहीं है, केवल नाममात्र का वर्णों की संकरता (रंगों का मिश्रण) चित्रों में ही देखी जाती है। व्याह-समय में ही स्त्रियाँ कुछ अपशब्द वकती हैं। (अन्यथा कोई किसी को गाली नहीं देता)। नाममात्र को ध्वजापट ही जहाँ काँपता (अन्य कोई डर से काँपता नहीं)। जहाँ रात्रि में चक्रवाकों को ही वियोग दुःख है (अन्य को नहीं), जिस राज्य में ब्राह्मणों और मित्रों से कोई द्वेष नहीं करता (नाममात्र को द्विजराज चन्द्रमा और मित्र सूर्य के द्वेपी केवल बादल हैं)। मेघ ही नगर घेर कर आकाश से बरसते हैं (अन्य कोई नगर शत्रुओं से नहीं

घेरा जाता है) अपयश ही से लोग डरते हैं (अन्य किसी से नहीं डरते) यश ही का सब को लोभ है (अन्य किसी बात के लोभी नहीं) दुख ही का जहाँ खंडन होता है (अन्य किसी सिद्धांत का खंडन नहीं) और जो राजा समस्त संसार के भूषण रूप हैं, ऐसे राजा राम चिरकाल तक सानंद राज करें।

(सत्ताईसवाँ प्रकाश, छंद ६)

केशवदास ने जो बात अलंकार में कही है, वही बात तुलसी ने सहज निरलंकार भाषा उससे कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग पर कह दी है—

रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई

वरनसुभ निजनिज धरम निरत वेद पथ लोग
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राजराज नहिं काहुहि व्यापा
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं
अल्प मृतु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी
सब उदार सब परउपकारी। विप्र-चरन सेवक नरनारी
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी

पंडत तिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज

इत्यादि

ऊपर के अवतरण से प्रगट हो जायगा कि तुलसी प्रसादपूर्ण काव्य से ही जो बात प्रकट कर देते हैं, केशव को उसके लिए

अलंकार चाहिये। सहजोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्ति ही उन्हें अधिक पसन्द है। उनकी कल्पना भी समाज के कुछ क्षेत्रों को ही छूकर नहीं रह जाती, वे धर्म, कुटुम्ब, भौतिक सुख सभी में क्रांति देखते हैं। केशव ने चाहे यह लिखा हो कि सुखी आदर्श राज्य में शत्रु नगर को नहीं घेरते, परन्तु उससे किसी ऊँचे राजनैतिक सिद्धांत का स्थापन नहीं हो जाता। तुलसी तो सामाजिकों का ही ऐश्वर्य नहीं दिखाते, वे प्राकृतिक ऐश्वर्य में भी अतुलनीय वृद्धि दिखा-कर रामराज के अलौकिक प्रभाव को व्यंजित करते हैं, जैसे

प्रगटी गिरिन्ह विविध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी
सागर निज मर्यादा रहहीं। डारहिं रतन ताहि नर लहहीं
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा विभागा
विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज
माँगे वारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज

केशव ने रावण का जो ऐश्वर्य व्यंजित किया है (देखिये अंगद-प्रसंग) उससे उनका राजकीय व्यवहार-ज्ञान सिद्ध होता है, परन्तु यह बात नहीं है कि तुलसी यदि चाहते तो ऐसा राजैश्वर्य-वर्णन वे नहीं कर सकते थे। वे इस प्रसंग की ग्रामीणता के लिए लांछित हैं, परन्तु यह तो वास्तव में उनकी अतुल रामभक्ति का फल था। उन्होंने रामविमुख रावण को अपमानित करने के लिए ही इस प्रसंग में राजनैतिकता नहीं बरती।

११—तुलसीदास और केशवदास

तुलसी मूलतः भक्त-कवि थे और केशव मूलतः रसिक पंडित कवि थे। राजदरबारों से उनका सम्बन्ध था। आश्रयदाताओं की प्रशंसा करने में उनकी काव्य-प्रतिभा चमक उठती थी और उन्हीं के मनोविनोद के लिए वे लिखते थे। सुधी राजसभागण

उनके श्रोता थे। श्रोतागणों में संस्कृत का ज्ञान भी अपेक्षित था। ऐसे वातावरण में उन्होंने अपने संस्कृत के पांडित्य और कवि-प्रतिभा से चमत्कार उत्पन्न किये, यह उनकी प्रतिभा का परिचायक है। वास्तव में जिस विलासपूर्ण राज-वातावरण में केशव रह रहे थे, उसमें रहकर इससे अच्छी कविता नहीं हो सकती थी। सच तो यह है कि प्रत्येक कवि प्रभावित होता है (१) अपने वातावरण से, (२) अपने कुटुम्ब और शिक्षा दीक्षा से, (३) अपनी अभिरुचि से और (४) अपने श्रोताओं की अभिरुचि से। कबीर, तुलसी और सूर इन सबके श्रोता अध्यात्मतत्त्व के जिज्ञासु और श्रद्धालु भक्त थे। केशव के श्रोता थे राजदरबारी विलासी पुरुष जो वारांगनाओं को गृहणियों से भी अधिक प्रीत समझते थे। दूसरा श्रोता था संस्कृतज्ञ पंडितवर्ग जिसे माघ, भारवि, बाण और श्रीहर्ष से विशेष प्रेम था। शृङ्गार-प्राण, विदग्ध सूक्तियों से महाराज को भुलाना ही उनका काम था। केशव भी इन्हीं पंडितों में से थे। तीसरा था समान-कर्मा कवि-वर्ग। कविप्रिया और रसिकप्रिया स्पष्टतः हमारे वर्ग के लिए लिखी गई थी और रामचंद्रिका में पग-पग पर छन्द बदलने का रहस्य भी यही है। केशव ने कविता को सीखने-सिखाने का विषय बना दिया। और पहले-पहल वह शिष्य-गुरु परम्परा शुरू हुई जो आज तक सीमित क्षेत्रों में चलती है। तीसरा श्रोता उनकी प्रसिद्ध वारांगना-मित्र है जिसका केशव पर बड़ा प्रभाव था। कुटुम्ब संस्कृत पण्डितों का था ही। इससे भाषा में कविता करना तो हेय ही समझते थे, जैसे-तैसे कुछ लिखकर रसिकों को प्रसन्न करने की बात थी। वातावरण सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रत्येक क्षेत्र में शिथिलता और विलासिता, उच्छृङ्खलता और अनाचार से पूर्ण था। केशव अपनी अभिरुचि के लिए प्रसिद्ध हैं ही। बुढ़ापे में भी उन्हें मलाल था कि उनके श्वेत केशों को देखकर

"चन्द्रमुखी मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाँय।" इन सबने केशव को इनका विशिष्ट क्षेत्र दिया। तीन पुस्तकें राजाश्रय से सम्बन्धित हैं। दो रस और अलंकार के ग्रन्थ और एक छन्द-ग्रन्थ (रामचन्द्रिका) उन्हें आचार्य बना देते हैं। रहे रामचन्द्रिका और विज्ञान गीता। वास्तव में ये केशव के प्रतिभा-क्षेत्र के बाहर जाकर लिखी रचनाएँ हैं। विज्ञान गीता संत-काव्य की परम्परा में आती है और रामचन्द्रिका राम-काव्य की श्रेणी में, यद्यपि शृङ्गार, पांडित्य-प्रदर्शन और आचार्यत्व वहाँ भी बड़ी मात्रा में उपस्थित हैं। कदाचित् तुलसी के 'मानस' की मान्यता होते देख केशव ने रामकथा पर लिखने की बात सोची, परन्तु जिन ग्रन्थों की ओर उनकी प्रतिभा सहारे के लिए झुक सकती थी (प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक) वे तुलसी ने पहले ही अपना लिये थे। अतः केशवदास को इन ग्रन्थों का वही अंश लेना पड़ा जो तुलसी ने नहीं लिया था। जैसे जनक की स्वयंवर-सभा में बाण-रावण। शेष के लिए उन्हें मौलिक बनना पड़ा। तुलसी ने रामकथा को कई बार कहा और रामकथा के सभी क्षेत्र खोज डाले थे। अतः केशव ने भक्तवत्सल भगवान राम की जगह महाराज रामचन्द्र को विषय बनाया। इस नवीनता के लिए धन्यवाद! परन्तु तुलसी पहले ही गीतावली में राम का यह रूप रख चुके थे। उनकी दास्य-भावना को भक्ति का आश्रय भी यही रूप था। अतः केशव ने इस महाराज-राम-रूप के भी अछूते ही अंगों को विकसित किया। सभी बातों में मौलिक होने के प्रयत्न में वे विचित्र हो गये हैं। वे रामचन्द्रिका में रामकथा भी कहेंगे, नये कवियों को छन्द लिखना भी सिखायेंगे; राम को महाराज, ब्रह्म और अवतार एक साथ बनायेंगे; शृङ्गार और भक्ति की विरोधी धाराएँ एक साथ ही प्रवाहित करेंगे। यह है रामचन्द्रिका की विडंबना! केशव ने सोचा होगा कि इतने विभिन्न, असम्बद्ध,

पहलुओं से पुष्ट उनकी रामकथा तुलसी की लोकप्रियता को पीछे छोड़ जायगी, परन्तु वे इसी भ्रम में रह गये। तुलसी की रामकथा का जो स्थान है, वह केशव की रामचन्द्रिका को नहीं मिलेगा, न मिला ही है। आज पंडित-वर्ग मात्र में उनकी चर्चा है और पाठ्य-पुस्तक होने की कारण उसका अध्ययन-अध्यापन हो जाता है, परन्तु साधारण जनता के भाव-क्षेत्र अथवा उसके विचार-क्षेत्र में उसका कोई स्थान नहीं। आज न हम कविता सीखने के लिए उसे पढ़ेंगे, न रामकथा सुनने के लिए। कला की सर्वोत्कृष्ट रचना होकर भी सहज कवि-अनुभूति से स्फुरित न होने के कारण रामचन्द्रिका असफल रही। कहाँ तुलसीदास की कविता-धारा स्रोतस्विनी-सी उमड़ी पड़ती है, कहाँ पग-पग पर विलास-कटाक्ष करके ठहरने, मुड़ने, हाव-भाव दिखाने वाले केशव की रामधारा !

१२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक रामकथा लेकर मुख्यतः ऐसे ही ग्रन्थों की रचना हुई है जिनमें कथा में काव्य-कौशल का प्रदर्शन ही मिलता है। कहीं सम्वाद पर बल है जैसे हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव में, कहीं कथा को ही विचित्र रूप से गूँथा है जैसे सेतु-बंधन और प्रसन्नराघव एवं अनर्घराघव में। प्रसन्नराघव में राम-सीता के पूर्वराग की नवीन कल्पना है। इस प्रकार राम-कथा पर शृंगार का आरोप हुआ और बाद के संस्कृत कवियों ने राम की मर्यादा की रक्षा का प्रयत्न नहीं किया। सुन्दर सूक्तियों, सुभाषितों, मुक्तक-काव्यों आदि से सहारा लेकर राम-कथा में विचित्रता लाने की हास्यास्पद चेष्टा की गई। केशव इसी कड़ी में आते हैं। तुलसी भी इन तीन-चार शताब्दियों के संस्कृत काव्य के प्रभाव से नहीं बचे हैं, प्रसन्नराघव से उन्होंने 'सीता-राम का पूर्वराग' लिया है और बरवै रामायण में सीता का शृंगार वर्णन है, एवं रामाज्ञा प्रश्न में ज्योतिष-ग्रन्थ (मंगल)

लिखकर राम-कथा कहने की चेष्टा है। परन्तु अपने सर्वोत्तम ग्रंथ मानस में उन्होंने राम-कथा को भक्तिरस में डुबो कर ही उपस्थित किया है और चन्द्र-वर्णन जैसे एकाध स्थलों को छोड़-कर ऊहा-प्रधान काव्य उन्होंने नहीं रचा। रसोद्रेक और मनो-विज्ञान पर उनकी दृष्टि सदैव ही रही है। उन्होंने विवाह का सांगोपांग नवीन पक्ष ढूँढ निकाला और उत्तरकांड को दर्शन और राम-भक्ति की इंद्रमणि बना दिया। परन्तु केशव की अंत-र्दृष्टि इतनी पैनी न थी, वह संस्कृत कवियों के राम ग्रन्थों के चमत्कार की चौंध में आ गये और सामान्य काव्य से हटकर उन्होंने प्रेत-काव्य की सृष्टि की। उसके समय के राज-कवि और कवि-कर्मी उनके इस महान् पांडित्य से चकित होकर मुक्तकंठ से उनके प्रशंसक हुए, यह ठीक है। परन्तु रस का स्रोत तो समसामयिकों ने तुलसी से ही ग्रहण किया।

केवल संस्कृत के परवर्ती राम-काव्यों से ही नहीं केशव ने, माघ, वाण, श्रीहर्ष, शूद्रक,, कालिदास और भवभूति की सामग्री से लाभ उठाने की चेष्टा की, कहीं-कहीं सफल अनुवाद ही प्रस्तुत कर दिया। 'कादम्बरी' में एक वर्णन है—

"ताल तिलक तमाल हिताल वकुल बहुलैः एलालता कुटिल नारिकेल कलपैः लोललोध्रवली लवंगपल्लवैः उल्लसित चूतरेणु पटले अलिकुल झंकारैः उन्मद कोकिलकुलकलापकोल हासानि, इत्यादि।

(कथामुख)

केशव ने इसी की हिन्दी कर दी है—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर
मञ्जुल मंजुल तिलक लकुचकुल नारिकेलवर
एला ललित लवङ्ग भङ्ग पुङ्गीफल सोहै
रूपी शुककुल कलित चित्त कोकिल अति मोहै

(प्रकाश ३, छन्द १)

इसी तरह शूद्रक की मृच्छकटिक में है—

> लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
> असत्पुरुषसेवेव दृष्टि निष्फलतां गता ॥

इसे हम रामचन्द्रिका में पाते हैं—

> वर्णत केशव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि
> कुपुरुष-सेवा ज्यों भई संतत मिथ्या दृष्टि
>
> (प्रकाश १३, छं० २१)

यह पता लगाना दिलचस्प होगा कि केशव पर तुलसी का प्रभाव है या नहीं। हम कह चुके हैं कि केशव की कथा-वस्तु का ढाँचा वाल्मीकि पर खड़ा है और कितने ही प्रसंगों के लिये वे स्पष्ट रूप से उसी के ऋणी हैं, जैसे लक्ष्मण की आत्म-हत्या करने की धमकी, विवाह से लौटते समय मार्ग में परशुराम का मिलना, इत्यादि दूसरे स्थान पर इस प्रभाव की विशद एवं विस्तृत विवेचना कर चुके हैं। यहाँ हमें यह बताना है कि कथा को वाल्मीकि से क्रम से उपस्थित करते हुए भी काव्य-प्रसगों के लिए रामचन्द्रिका का कवि वाल्मीकि का ऋणी नहीं है। वर्षा-शरद-वर्णन, राम का विवाह, पम्पासरोवर वर्णन, सभी में वह मौलिक है।

परन्तु दो प्रसंग ऐसे हैं जो हमारे काम में यह सन्देह उठा देते हैं कि शायद केशव ने 'मानस' से उन्हें लिया हो—पूर्ववर्ती राम-कथा में उनको कोई स्थान नहीं मिला है और स्वयं केशवदास की कल्पना उनकी ओर जा ही नहीं सकती थी। वे प्रसंग हैं।

१—राम के विवाह का विशद वर्णन

२—वन-पथ की झाँकी

यदि समीक्षात्मक रूप से अध्ययन किया जाय तो रामचरितमानस और रामचन्द्रिका के इन दोनों प्रसंगों में बड़ा

लिखकर राम-कथा कहने की चेष्टा है। परन्तु अपने सर्वोत्तम ग्रंथ मानस में उन्होंने राम-कथा को भक्तिरस में डुबो कर ही उपस्थित किया है और चन्द्र-वर्णन जैसे एकाध स्थलों को छोड़-कर ऊहा-प्रधान काव्य उन्होंने नहीं रचा। रसोद्रेक और मनो-विज्ञान पर उनकी दृष्टि सदैव ही रही है। उन्होंने विवाह का सांगोपांग नवीन पक्ष ढूँढ निकाला और उत्तरकांड को दर्शन और राम-भक्ति की इंद्रमणि बना दिया। परन्तु केशव की अंत-र्दृष्टि इतनी पैनी न थी, वह संस्कृत कवियों के राम ग्रन्थों के चमत्कार की चौंध में आ गये और सामान्य काव्य से हटकर उन्होंने प्रेत-काव्य की सृष्टि की। उसके समय के राज-कवि और कवि-कर्मी उनके इस महान् पांडित्य से चकित होकर मुक्तकंठ से उनके प्रशंसक हुए, यह ठीक है। परन्तु रस का स्रोत तो समसामयिकों ने तुलसी से ही ग्रहण किया।

केवल संस्कृत के परवर्ती राम-काव्यों से ही नहीं केशव ने, माघ, बाण, श्रीहर्ष, शूद्रक,, कालिदास और भवभूति की सामग्री से लाभ उठाने की चेष्टा की, कहीं-कहीं सफल अनुवाद ही प्रस्तुत कर दिया। 'कादम्बरी' में एक वर्णन है—

"ताल तिलक तमाल हिंताल वकुल वहुलैः एलालता कुटिल नारिकेल कलपैः लोललोध्रवली लवंगपल्लवैः उल्लसित चूतरेणु पटले अलिकुल झंकारैः उन्मद कोकिलकुलकलापकोल हासानि, इत्यादि।

(कथामुख)

केशव ने इसी की हिन्दी कर दी है—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर
मञ्जुल मंजुल तिलक लकुचकुल नारिकेलवर
एला ललित लवङ्ग भङ्ग पुङ्गीफल सोहैं
रूपी शुककुल कलित चित्त कोकिल अति मोहैं

(प्रकाश ३, छन्द १)

इसी तरह शूद्रक की मृच्छकटिक में है—

[illegible] ।
[illegible] ॥

इसे हम रामचन्द्रिका में पाते हैं—

[illegible]
[illegible]
(प्रकाश १३, छं० २१)

यह पता लगाना दिलचस्प होगा कि केशव पर तुलसी का प्रभाव है या नहीं। हम कह चुके हैं कि केशव की कथा-वस्तु का ढांचा वाल्मीकि पर खड़ा है और कितने ही प्रसंगों के लिये वे स्पष्ट रूप से उसी के ऋणी हैं, जैसे लक्ष्मण की आत्म-हत्या करने की धमकी, विवाह से लौटते समय मार्ग में परशुराम का मिलना, इत्यादि दूसरे स्थान पर इस प्रभाव की विशद एवं विस्तृत विवेचना कर चुके हैं। यहाँ हमें यह बताना है कि कथा को वाल्मीकि से क्रम से उपस्थित करते हुए भी काव्य-प्रसगों के लिए राम-चन्द्रिका का कवि वाल्मीकि का ऋणी नहीं है। वर्षा-शरद-वर्णन, राम का विवाह, पम्पासरोवर वर्णन, सभी में वह मौलिक है।

परन्तु दो प्रसंग ऐसे हैं जो हमारे सामने यह सन्देह उठा देते हैं कि शायद केशव ने 'मानस' से उन्हें लिया हो—पूर्ववर्ती राम-कथा में उनको कोई स्थान नहीं मिला है और स्वयं केशव-दास की कल्पना उनकी ओर जा ही नहीं सकती थी। वे प्रसंग हैं।

१—राम के विवाह का विशद वर्णन
२—वन-पथ की झाँकी

यदि समीक्षात्मक रूप से अध्ययन किया जाय तो राम-चरितमानस और रामचन्द्रिका के इन दोनों प्रसंगों में बड़ा

साम्य दिखलाई देगा। यह साम्य भावना में मिलेगा, वस्तु-निरूपण और वर्णन में तो मौलिकता का आग्रह यहाँ भी है। जब हम देखते हैं कि यही दो तुलसी के अत्यन्त मौलिक सुन्दर अंग हैं तो इस अनुमान को ही बल देना होता है कि कम-से-कम ये प्रसंग वहीं से लिये गये हैं, यद्यपि प्रसंग-विधान स्वयं केशव का है। पलकाचार, ज्योंनार, गाली, दूलह-दुलहिन, एवं मंडप की शोभा—ये बातें इसी ढंग पर तुलसी में भी हैं, परन्तु जहाँ तुलसी ने गालियों का निर्देश किया है, वहाँ केशव वाग्विलास में पटु हैं, अतः भूमि को वारांगना बनाकर राम पर श्लेष व्यंग करते हैं। एक बात और है, इन प्रसंगों में अनायास ही रामभक्ति की योजना हो गई है। हो सकता है, तुलसी ही इसके लिए जिम्मेवार हों। तुलसी कहते हैं—

बैठे बरासन रामजानकि मुदित मन दशरथ भये

केशवदास का कहना है—

बैठे जराम तरे पलिका पर रामसिया सबको मन मोहैं
ज्योतिसमूह रहो मढ़िकै सुर भूलि रहैं बपुरो नरको है
केशव तीनहु लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि खोहैं
सोभन सूरज मण्डल मांस बनो कमला कमलापति मोहैं

इसी प्रकार वन-पथ-प्रसंग में, तुलसी की भाँति, यहाँ भी लोग संभ्रम-वश पूछते हैं—

कौन हो कितते चले कित जात हौ केहि काम जू
कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह बाम जू

किधौं यह राजपुत्री वरही वरी है
किधौं उपरि वर्यौ है यह सोभा अभिरत है
किधौं रति रतिनाथ जस राजथ केसोदास
जात तपोवन, सिव बैर सुमिरत है

किधौं मुनि शापहत, किधौं ब्रह्म दोषरत
किधौं सिद्धियुत सिद्ध परम विरत है
किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हे
किधौं तुम हरिहर श्रीहौ शिवा चाहत फिरत है

जो हो, प्रसंग का निर्देश अवश्य तुलसी ने किया होगा, यद्यपि उनकी तत्सम्बन्धी रचना केशव के ऊहात्मक उक्ति-वैचित्र्य से कहीं अधिक सुन्दर है।

केशव और तुलसी की रामकथा में मूल अन्तर यही है कि जहाँ केशव अधिकांश स्थलों पर प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक का अनुवाद ही प्रस्तुत कर रहे हैं, वहाँ तुलसीदास इन ग्रन्थों से सहारा मात्र लेते हैं, यही नहीं इनसे ली हुई सामग्री को काव्य और मनोविज्ञानसे पूर्णतः पुष्ट करके पाठक के सामने रखते हैं। केशव मूल का सौन्दर्य भी समाप्त कर देते हैं—उन्हें न अनुपात का ध्यान रहता, न काव्यगत सौन्दर्य का, न मनोविज्ञान का। वे "संस्कृत कवियों और और नाटककारों की प्रतिभा के इतने नीचे दब गये हैं कि स्वयं उनका स्वरूप विकृत और उनका स्वर अस्वस्थ हो गया है।"

३

रसिकप्रिया

केशवदास के ग्रंथों में रसिकप्रिया सर्वश्रेष्ठ है। आचार्यत्व की दृष्टि से चाहे कविप्रिया का कितना ही महत्व रहा हो और पांडित्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका चाहे जितनी भी स्तुत्य हो, केशव की काव्य-प्रतिभा और सहृदयता के सर्वोच्च दर्शन रसिक प्रिया में ही होते हैं। जैसा अन्यत्र लिखा है, रसिकप्रिया रस-ग्रन्थ है। उसमें कवित्त-सवैयों का संग्रह है जो केवल उदाहरण रूप में उपस्थित हैं। ये उदाहरण लक्षण के कितने निकट पहुँचते हैं, यह हम पहले देख चुके हैं। यहाँ हमें इन उदाहरणों के स्वरूप उपस्थित सामग्री की काव्य-परीक्षा करनी है।

रीति-ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में श्री रामचन्द्र शुक्ल ने सत्य ही कहा है—"इन रीति ग्रन्थों के कर्ता भावुक, सहृदय, और निपुण कवि थे। इनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः इनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में उपस्थित हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण-ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८६)। केशव के सम्बन्ध में भी यही बात लागू है।

रसिकप्रिया के नायक हैं कृष्ण, राधा नायिका हैं। यद्यपि केशव ने ग्रंथारंभ में कृष्ण में नवरसों की स्थापना की है—

श्री वृषभानु कुमारि हेतु शृंगार रूपमय
बास हास रस हरे मात बंधन करुनामय
केशीप्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर
भय दावानल पान पियो वीभत्स कसीउर
अति अद्भुत वच विरंचि मति शत संतते शोच चित
कहि केशव सेवहु रसिक नवरस में व्रजराज नित

परन्तु वे स्वयं शृंगार रस को ही लेकर रह गये और उनके इस मौलिक नवरस-स्थापन का आगे के कवियों ने भी उपयोग नहीं किया। यदि किया होता तो हिन्दी साहित्य का भंडार अत्यन्त सुन्दर कवित्त और सवैयों से पूर्ण होता और रसवैभिन्न्य का अच्छा अवसर मिलता।

इसी मान्यता को लेकर केशव ने अधिकांश पदों में स्पष्ट रूप से कान्ह, राधिका आदि शब्द रखे हैं और जहाँ नहीं रखे हैं, वहाँ भी वे व्यंग्य हैं। इस प्रकार सारे नायिका-भेद को राधा-कृष्ण पर घटा दिया गया है। प्रकाशों के अन्त में वे बराबर लिखते आये हैं कि वे राधा-कृष्ण का शृंगार-वर्णन कर रहे हैं। इससे कई विशेषताएँ उनके काव्य में आ गई हैं—

(१) निर्व्यक्तिकता—कवि को आत्म-व्यंजना नहीं करनी पड़ी। उसने सारी भावनाओं का आरोप राधा-कृष्ण पर कर दिया और वह जैसे तटस्थ खड़ा रहा। यद्यपि अन्त में वह परम्परानुसार अपना नाम डाल देता है, जैसे वह यह कह रहा हो कि बात चाहे किसी की हो, मूल में व्यक्तित्व उसका ही है, यह भुला देना ठीक नहीं होगा। रीतिकाव्य में जो तटस्थता, परव्यंजकता, आत्म-व्यंजना को दबाने की प्रवृत्ति है, वह इसी कारण है कि कवि ने अपने को अपने काव्य से दूर रखा है,

(२) कृष्ण का नायक रूप—इस प्रकार के सवैयों में कृष्ण

लौकिक नायक के स्तर पर उतर आते हैं, राधा लौकिक नायिका के। इस प्रकार रीति-काव्य में पौराणिक राधा-कृष्ण और भक्ति-काव्य के राधा-कृष्ण का साधारणीकरण हो गया है। यदि हम विश्लेषण करें तो पता लगेगा कि यह साधारणीकरण की प्रवृत्ति कई शताब्दियों से चली आती थी। भागवत में कृष्ण ब्रह्म हैं। राधा का उल्लेख नहीं है, परन्तु वे गोपियों के साथ प्रेम-लीलाएँ रचते हैं। व्यास पद-पद पर बता देते हैं कि यह प्रेमलीला ब्रह्म-जीव के अनन्य सम्बन्ध का रूपक है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में गोलोकवासी की प्रेयसी के रूप में राधा भी प्रतिष्ठित है। आलिंगन, परिरम्भण, संयोग आदि का स्पष्ट उल्लेख है। कृष्ण को "कामकलानिधि" कहा गया है। यद्यपि रीतिशास्त्र का सहारा नहीं लिया गया है। जयदेव के काव्य में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण से सूत्र लेकर कृष्ण को धीर ललित नायक के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ भी कृष्ण उसी रूप में उपस्थित हैं, परन्तु कवि प्रकृति के उद्दीपन, मान, दूती, अभिसार—इनका भी सहारा लेता है। ये स्पष्टतयः शृङ्गार-शास्त्र में मान्य हैं, परन्तु यहाँ यह खण्ड-काव्य के विषय बना दिये गये हैं। विद्यापति के काव्य में कृष्ण-राधा को एकदम नायक-नायिका के रूप में खण्ड-काव्य बनाकर उपस्थित किया गया है। विद्यापति के विषय हैं—राधा-कृष्ण का पूर्वराग, मिलन, अभिसार, मान, दूती, मानमोचन, पुनर्मिलन, विरह, मानसिक मिलन। यहाँ मानसिक मिलन के आध्यात्मिक संकेत को छोड़कर शेष लौकिक प्रेम-काव्य ही है। सूरदास ने राधा-कृष्ण के प्रेम-विकास को रीति-शास्त्र के भीतर से नहीं देखा यद्यपि 'साहित्यलहरी' के पदों में अलंकार-निरूपण और नायिका-भेद का प्रयत्न है। फिर भी सूर-सागर के राधा-कृष्ण का प्रेमविकास अत्यन्त स्वाभाविक है। फिर भी शृंगार काव्यों से उन्होंने सहारा लिया है। उनके ग्रन्थ

पर ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और जयदेव का प्रभाव ही अधिक है। उनके पदों में आध्यात्मिक अर्थ लौकिक शृंगार से पुष्ट होता हुआ आगे बढ़ता है। परन्तु कवि ने प्रेमविकास को अत्यन्त मानवीय धरातल पर उतारा है।

केशव के काव्य में राधा-कृष्ण नायक-नायिकाओं की शृंगार रसांतर्गत सभी परिस्थितियों के भीतर से गुजरते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें उन पदों में आना है जो शृंगार की अनेक परिस्थितियों के उदाहरण-स्वरूप हैं। रीति-काव्य में कृष्ण का यही रूप मान हो गया है। रीति-काव्य में भक्ति का समावेश भी है यद्यपि लक्ष्य सहृदय पाठक ही है, भक्त नहीं। दृष्टिकोण यह है—

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई
न तो राधा-मोहन सुमिरन को बहानो है

यह स्पष्ट है कि रीति-काव्य की इस प्रकार के कवित्त सवैयों की परम्परा केशव से ही चली। उन्होंने अत्यन्त शक्तिशाली रूप से नई रूढ़ियों का निर्माण किया है। 'रसिकप्रिया' में कवि ने प्रसादगुण को हाथ से नहीं जाने दिया है और माधुर्यवृत्ति का भी ध्यान रखा है। इससे अनेक स्थानों पर वह सुन्दर काव्य की सृष्टि कर सका है। जैसे—

आजु विराजत है कहि केशव श्री वृषभानु कुमारि कन्हाई
बनी विरंचि वही रस काम रची जो वरी सो बधू न बनाई
अंग विलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारिन बार लगाई
मूरतिवंत शृँगार समीप शृंगार किये जानो सुन्दरताई

यहाँ कवि ने बानी (सरस्वती) को कामदेव के हाथों से रचाया है, यह अत्यन्त असाधारण कल्पना है। नारी-सौन्दर्य के आदर्श के लिए रति की कल्पना हुई है, वाणी की नहीं। एक दूसरा कवित्त है—

कोमल विमल मन विमला सी सखी साथ
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के
नूपुर की ध्वनि सुनि मोरे कलहंसन के
चौंकि चौंकि परैं चारु चेटवा मराल के
कंचन के भार कुचभारनि सकुच भार
लचकि लचकि जात कटि तट बाल के
हरैं हरैं बोलत विलोकत हरेई हरैं
हरैं हरैं चलत हरत मन लाल के

ऊपर के पद में 'विमल' 'विमला' 'कमला' 'कमल' आदि में अनुप्रास का आग्रह स्पष्ट है। इसी प्रकार 'कञ्चन के भार कुच भारनि सकुच भार' कहकर कवि ने अपनी नायिका को अत्यन्त ऐश्वर्यवती, सौन्दर्यवती और लज्जावती चित्रित किया है। भाषा-सौन्दर्य ने सौन्दर्य का एक मूर्त चित्र उपस्थित कर दिया है—

चौंकि चौंकि परैं चारु चेटवा मराल के

वास्तव में, भक्त कवियों ने ब्रजभाषा को काफी माँज दिया था। रीति-कवियों ने उनके इस भाषा-संस्कार से काफी फायदा उठाया है। नन्ददास का एक पद है —प्यारी पग हरैं हरैं धर। केशवदास ने इस हरैं शब्द का चमत्कार ही उपस्थित कर दिया है।

एक छंद में केशव ने सांगरूपक द्वारा कृष्ण के सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है—

चपला पट मोर किरीट लसै मघवा धनु शोभ बढ़ावत है
मृदु गावत आवत वेणु बजावत मित्र मयूर लजावत है
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत है
घनश्याम घने घन वेष धरे जुबने बनते ब्रज आवत है

परन्तु अधिकांश कवित्त-सवैयों में केशव यमक का मोह नहीं छोड़ पाते—

हरित हरित हार हेरत हियो हरत
हारी हूँ हरिननैनी हरिन कहूँ लहो
वनमाली ब्रज पर बरखत वनमाली
बनमाली दूर दुख केशव कैसे सहों
हृदय कमल नैन देखि कै कमलनैन
होहुँगी कमलनैनि और हौं कहा कहों
आप घने घनश्याम घनहीं ते होत घन
श्याम के दिवस घनश्याम बिन क्यों रहों

इस प्रकार के काव्य की तह तक पहुँचना कठिन काम है। पाठक को पहली ही पौर पर दंडधारी यमक का सामना करना पड़ता है जिसका भेद कोष की सहायता के बिना खुल ही नहीं सकता। तब उसे स्त्री-अंगों के प्रति रूढ़ काव्यालंकारों का भेद जानना होता है। इसके बाद ही उसे केशव की "हरिणनेत्री" नायिका के दर्शन होते हैं।

कहीं-कहीं केशव कल्पना की अत्यन्त तीव्र उड़ान को रूपक में बाँध देते हैं, जैसे

है तरुणाई तरंगिन पूर अपूरब पूरब राग रँगे पय
केशवदास जलज मनोरथ संभ्रम विभ्रम भूर भरे मय
तर्क तरग तरंगित तुङ्ग तिमिंगल शूल विशाल निकेचय
कान्ह कछू करुणामय हे सखि तैंही किए करुणा वरुणासे

इसमें तरुणाई को समुद्र बनाया गया है, प्रेम या काम अथव मिलनेच्छा का जहाज है, तर्क की तरंगों से यह जहाज टकरा रहा है, हृदयवेदना रूपी तिमिंगल उसे नष्ट करने पर तुले ही हैं। कृष्ण ही इस जहाज को करुणा कर पार लगाते हैं। साधारणतः इस प्रकार की कल्पना भक्ति काव्य को ही विशेष शोभित करती है, परन्तु यहाँ उससे शृंगाररस की वृद्धि ही अभीष्ट हो गई है।

फिर भी ऐसी उत्प्रेक्षाएँ उच्च कवि-प्रतिभा प्रगट करती हैं। इसी कोटि की एक उत्प्रेक्षा यह है—

> वन में वृषभानु कुमारि मुरारि रमें रुचिसों रस रूप पिये
> कहू कूजत पूसत कामकला विपरीत रची रति केलि लिये
> मणि सोहत श्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चहु चार हिये
> मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शशि अंक लिये

कहीं-कहीं यह कल्पना की उड़ान इतनी ऊँची और असंगत हो जाती है कि साधारण चिन्ता उसे पकड़ भी नहीं सकती, जैसे यहाँ पर—

> भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी कर मोतिन की सुखदैनी
> ताहि विलोकत आरसी लै कर आरस सोह करुनारस नैनी
> केशव कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति को अति पैनी
> सूरजमंडल में शशिमंडल मध्य धँसी जनु ताल-त्रिवेणी

इस छन्द में नायक-नाययिका की प्रतिबिंब-भेंट का वर्णन है। नायिका ने माला पहरी है, उसका तागा लाल रङ्ग का है, मोतियों की लर उस पर लिपटी है। वह आरसी लेकर उस हार को अपने हृदय पर तरंगित देख रही है। इतने में कृष्ण (नायक) आ गये। पीछे से छिप कर उसे देखने लगे। परन्तु नायिका की आरसी में उनकी झाँई पड़ी और नायिका ने उन्हें पकड़ लिया। लाल गुण में गूँथी हुई माला जैसे सूरजमण्डल है, नायिका का मुख शशिमण्डल है, कृष्ण जैसे त्रिवेनी हैं। या नायिका की वेणी माला और मुख की परछाई के बीच आ पड़ी है और कृष्ण उसे छिप कर देखते हैं।

केशव ने बोधमाल के अंतर्गत कुछ प्रेमकूट भी लिखा है जो एक प्रकार से सूरदास के दृष्टकूटों की ही श्रेणी का है। अंतर यह है, कि उनके खोलने के लिए एक शब्द के अनेक अर्थ जानने

और अर्थ की परंपरा लगाने की आवश्यकता है और यहाँ रस-शास्त्र की रूढ़ियों और कवि-परंपरा का ज्ञान अनिवार्य है—
नायिका सखियों में बैठी है—

बैठी हुती वृषभानु कुमारि सखीन की मण्डली मण्डि प्रवीनी
लै कुम्हिलानो सो कंज परी इक पायन आइ गुवारिन धीनी
चंदन सों छिरकी वह पाकहँ पान दये करुणारस भीनी
चंदन चित्र कपोलन लोपिकै अञ्जन आँजि विदा कर दीनी

ग्वालिनी ने कुम्हलाया हुआ जो कमल सामने पैरों पर रखा, इसका अर्थ है कि नायक इसी की भाँति तेरे विरह में कुम्हला रहा है। नायिका ने उस कमल पर चंदन छिड़का, अर्थ बताया कि मैं उसके हृदय की विरहतपन शांत करूँगी। पान दिया—कि मैं भी उससे अनुराग करती हूँ। उस ग्वालिनी के गालों पर चन्दन लेप कर और आँखों में अंजन लगा कर विदा किया, अर्थात् नायक जान ले जब चाँदनी फैलेगी और सब सो जायेंगे, तब मिलूँगी। इसी प्रकार यह दूसरा पद है—

सखि मोहन गोप सभा महँ गोविंद बैठे हुते द्युति को धरिकै
जनु केशव पूरण चंद्र लसै चित चोर चकोरन को हरिकै
तिन को उलटौ करि आन दियो किहु नीरज नीर नए भरिकै
कहि काहे तें नेकु निहार मनोहर फेर दियो कलिका करिकै

गोविंद गोपसभा में बैठे थे, इससे नायिका कार्यादेश दूती स्पष्ट तो कह नहीं सकती थी। अतः इशारा हुआ। उसने पानी से भरा हुआ कमल लाकर उलटा कर उन्हें दिया—तात्पर्य यह है कि नायिका उनके वियोग में इस तरह रो रही है। कमल नेत्रों के उपमान हैं ही। नायक ने उसको थोड़ा देखा, और उसके फैले हुए दलों को संकुचित कर, उसे कली का रूप बनाकर दूती को लौटा दिया। यहाँ व्यंग है कि जब कमल संकुचित हो जायगा, तब मिलूँगा।

काव्य-प्रसिद्धि है कि रात होने पर कमल संकुचित हो जाते हैं। सारे छन्द का ढाँचा इसी रूढ़ि प्रसिद्धि पर खड़ा है और इसे समझे बिना पाठक छन्द का अर्थ नहीं जान सकता। कवि ने इन प्रेमकूटों का बोधमाल के उदाहरण में रखा है, परन्तु हम जानते हैं कि बाद में उनपर स्वतन्त्र रूप से कविता का प्रासाद खड़ा किया गया।

रसिकप्रिया की विशेषता उसकी सुन्दर भाषा और उसका प्रसादगुण है, जैसे

चंदन विटप वपु कोमल अमल दल
कलित ललित तालपरी लवङ्ग की
केशोदास तामैं दुरी दीप की सिखासी दौरि
दुरखत नीलवास द्युति अंग अंग की
पौनयान पत्तीपद शब्द जित तित होत
तित तित चौंकि चौंकि चाहै चोप संगकी
नंदलाल आगम विलोकै कुञ्ज जालवाल
लीन्ही गति तेही काल पंजर पतंग की

परन्तु कहीं-कहीं लोकज्ञान को आवश्यक अंग बनाकर भाव को क्लिष्ट भी बना दिया गया है, जैसे इस शतरञ्ज के रूपक में—

प्रेममय भूप रूप सचिव सँकोच शोच
विरद विनोद फील मेलियत पचि कै
तरल तुरग अविलोकनि अनंत गति
रथ मनोरथ रहे प्यादे गुन गचि कै
दुहूँ ओर परी जोर घोर घनी केशोदास
होइ जीत कोनकी को हारे हिय लचि कै
देखत तुम्हें गुपाल तिहि काल डरि बाल
उर शतरंज कैसी बाजी राखी रचि कै

कृष्ण को देखते ही नायिका ने अपने हृदय रूपी शतरंज पर बाजी रच दी—खूब! सूरदास ने भी अपने भक्तिकाव्य में शतरंजज्ञान का प्रमाण दिया है, परन्तु उन्होंने संसार के माया-प्रपञ्च को ही शतरंज बनाया है। केशवदास ने नायिका के हृदय-भावों को ही शतरंज की चालें बना डाला। स्थान-स्थान पर केवल नामावली रूप में नायिका के अंगों के प्रतीक रख दिये गये हैं, जैसे

> कञ्ज कैसे फूले नैन दारों से दशन एन
> बिंब से अधर इक सुधा सो सुधार्‌यो है
> बेनी पिक बेनी की त्रिवेनी की बनाइ गुही
> बरनी बारीक कटि हौं को करि हार्‌यो है
> कीने कुच अमल कलपतरु कैसे फल
> केशोदास भीत विटिप मुगुध विचार्‌यो है
> देख्यो न गुपाल सखि मेरी को शरीर सब
> सोने से सँवारि सब सोंधे सों सुधार्‌यो है

इस प्रकार के पदों ने काव्यशास्त्र-ज्ञान की एक रूढ़ि ही पैदा कर दी जिसने परवर्ती सारे काव्य को प्रभावित किया।

'रसिकप्रिया' में अनेक ऐसे कुरुचिपूर्ण स्थल भी हैं जिनके लिए केशव सत्य ही लांछित हैं। राधाकृष्ण का प्रेम एकांतिक प्रेम है, कम से कम रीतिकवियों में, वहाँ गोपियाँ, राधा और कृष्ण यही तीन व्यक्तित्व प्रधान हैं। नन्द, यशोदा, वृषभानु और उनकी पत्नी, सास-ससुर, मा-बाप के रूप में नहीं आती। इस एकांतनिष्ठ लीलाविलास के दर्शन हमें भक्त कवियों में ही होते हैं। बाद को तो इस एकांतिक प्रेम के चित्रण में एकदम मर्यादा का अभाव हो गया। केशवदास ने अपने काव्य में प्रसंगवश नायक-नायिका के मिलन की योजना की है। एक पद में धाई के घर मिलने की

व्यवस्था है, दूसरे पद में घर में आग लग गई है, भाग-दौड़ मची है, परन्तु कृष्ण इस हड़बड़ में सोती राधिका को जगाकर

'लोचन विसाल चारुचिबुक कपोल चूमि
चांपे की सी माला लाल लीनी उर लाय कै

एक पद में उत्सव के दिन मिलना होता है, एक पद में न्योते के मिस। वास्तव में केशव की कल्पना लोकव्यवहार के साथ चलती थी, अतः उन्होंने ये भेद कर दिये। फिर ये उदाहरण देना पड़े। इनसे ही 'देव' जैसे कवियों को कुरुचिपूर्ण कवित्त लिखने का उत्साह मिला।

रसिकप्रिया में केशव भावव्यंजना पर इतना बल देते हैं कि वे अस्वाभाविक हो जाते हैं। सच तो यह है कि परवर्ती रीतिकाल की शृंगारस विवेचन की सभी प्रवृत्तियाँ केशवदास की इस रचना में पूर्ण विकसित रूप से मिलती हैं। इन प्रवृत्तियों को उपस्थित करने का श्रेय कुछ उन्हें है, कुछ उनके वातावरण को कुछ उस समिति रीतिशास्त्र को जिसका सहारा उन्होंने लिया। परन्तु स्वयं युग की चेतनाधारा किस ओर दौड़ रही है, इसमें भी सन्देह नहीं है, नहीं तो परवर्ती कवियों को केशव का काव्य एक बड़ी आवश्यक रूढ़ि न बन पाता।

४

केशव का प्रकृति-वर्णन

जैसा हम कह चुके हैं, केशव ने प्रकृति-वर्णन को 'अलंकार' के अन्दर रखा है। कविप्रिया के प्रकृति सम्बन्धी स्थलों को पढ़ने से यह पता चलता है कि वे वस्तु-निरूपण मात्र को वर्णन मानते हैं। इससे हमें आशा करनी चाहिये कि उनके प्रकृति-वर्णन नामोल्लेख मात्र होंगे। परन्तु केशव वैसा कवि नामोल्लेख में भी पांडित्य दिखाए बिना नहीं रह सकता इसलिए वह श्लेप का सहारा लेकर चमत्कार की सृष्टि करता है। नामोल्लेख मात्र से प्रकृति का कोई रूप सामने नहीं आ सकता, श्लेप के प्रयोग से तो प्रकृति सौन्दर्य कोसों दूर भाग जाता है। दंडकवन का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

वेर भयानक सी अति लगैं
अर्कसमूह तहाँ जगमगैं

× × ×

पांडव की प्रतिमा सम लेखो
अर्जुन भीम महामति देखो

यहाँ वेर, अर्क, अर्जुन और भीम शब्दों में श्लेप है—

वेर=(१) वेरफल (२) काल।
अर्क=(१) धतूरा (२) सूर्य।
अर्जुन=(१) कुकुभ वृक्ष (२) पांडुपुत्र।
भीम=(१) अम्लवेतसवृक्ष (२) पांडुपुत्र।

कुकुभ को अर्जुन और अम्लवेतस को भीम केवल शब्द-साम्य की दृष्टि से कहा गया है, नहीं तो इनमें समानता ही क्या है ? इस प्रकार कोई प्रकृति-चित्र उपस्थित नहीं हो सकता।

इसी प्रकार जहाँ उद्दीपन भाव के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन है, वहाँ वह अलंकार-प्रतिष्ठा के पीछे छिप जाता है। वर्षा और कालिका दोनों का एक साथ वर्णन करते हुए केशवदास लिखते हैं—

> भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर
>
> भूषण जराय ज्योति तड़ित रलाई है
>
> दूरि करी सुख दुख सुखमा शशी की नैन
>
> अमल कमलदल दलित निकाई है
>
> केशवदास प्रबल करेणुका गमन हरे
>
> मुकुत सुहंसक शबद सुखदाई है
>
> अम्बर वलित मति मोहै नीलकण्ठ जू की
>
> कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है

(इन्द्र-धनुष ही जिसकी सुन्दर भौंहे हैं, बादल ही जिसके उन्नत कुच हैं, विज्जुछटा ही जिसके जड़ाऊ जेवर हैं, जिसने अपने मुख से सहज ही में चंद्रिमा के मुख की शोभा दूर कर दी है, इत्यादि, जो नीलकंठ महादेव की मति को मोहित करती है, वही कालिका या पार्वती है या यह वर्षा है।)

निम्नलिखित सूर्य का यह वर्णन उत्प्रेक्षा अलंकार के कारण उद्दीपन विभाव को ढक लेता है—

> अरुणगात अति प्रात, पद्मिनी प्राणनाथ मय
>
> मानहु केशवदास कोकनद कोक प्रेममय
>
> परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट
>
> किधौं इन्द्र को छत्र मढ़्यो माणिक मयूख पट

के शोणित कलित कपाल यह, किल कपालिका काल को
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को

(सूर्य प्रातःकाल अति लाल होकर उदय हुए हैं, मानो कमल और चक्रवाक का प्रेम जो हृदय में है, बाहर निकल आया है। या कोई सिंदूर से रँगा मङ्गल घट है। या इंद्र का छत्र है जो माणिक की किरणों से बने हुए कपड़े से बनाया गया है। या निश्चय-पूर्वक काल रूपी कापालिक के हाथ में यह किसी का रक्त-भरा सिर है, या पूर्व दिशा रूपी स्त्री के मस्तक का माणिक है।)

राम-काव्य में पुराणों को भाँति वर्षा और शरद के वर्णन का बड़ा महत्त्व है। केशवदास ने भी उनका वर्णन किया है। वर्णन उद्दीपन के भीतर रखा जा सकता है। वह अनेक अलंकारों से पुष्ट है। वर्षा का वर्णन इस प्रकार है—

देखि राम बरषा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई
आसपास तम की छवि छाई। राति द्यौस कछु जानि न जाई
मन्द मन्द धुनि सों घन गाजैं। तूर तार जनु आवझ बाजैं
ठौर ठौर चपला चमकैं यों। इन्द्रलोक तिय नाचति है ज्यों

(देखो राम, वर्षा ऋतु आ गई। इससे उद्दीपन के कारण रोम-रोम को दुःख होता है। चारों ओर अंधेरा इतना है कि रात-दिन कुछ जाना नहीं जाता। मन्द-मन्द ध्वनि से बादल गरजते हैं उनका शब्द ऐसा लगता है मानो तुरही, मँजीरा और ताशे बजते हों और जगह-जगह बिजली चमकती है जैसे इन्द्रपुरी की अप्सराएँ नाचती हों)

सोहैं घन स्यामल घोर घने। मोहैं तिनमें बकपांति मनैं
संखावलि भी बहुधा जल स्यों। मानों तिनको उगिलै बल स्यों
शोभा अति शक्रशरासन में। नाना द्युति दीखित है घन में
रत्नावलि सी दिवि द्वार मनो। वर्षागम बांधिय देव मनो

घनघोर घने दसहू दिसि छाये । मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये
अपराध बिना छितिके तन ताये । तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये
अति गाजत बाजत दुंदुभि मानों । निर्घात सबै पबिपात बखानों
धनु है, यह गौर मदाइन नाहीं । सरजाल बहै जलधार बृथाहीं
यह चातक दादुर मोर न बोलै । चपला चमकैन फिरै खँग खोलै
दुतिवंतन को बिपदा बहु कीन्ही । धरती कहँ चन्द्रबधू धरि दीन्ही

(घोर काले बादल सोहते हैं, उनमें उड़ती हुई बक-पंक्तियाँ मन को मोहती हैं—जैसे बादल समुद्र से जल पीते समय एक साथ बहुत से शंख भी पी गए थे, जो वे बलपूर्वक उगल रहे हैं । इन्द्र का धनुप अत्यधिक शोभा दे रहा है जैसे वर्षा के स्वागत में देवताओं ने सुरपुर के द्वार पर रत्नों की वन्दनवार बाँधी हो । सब ओर घने बादल छाये हुए हैं मानों इन्द्र ने सूर्य पर चढ़ाई की है—सूर्य ने बिना अपराध पृथ्वी को संतप्त किया, अत: पृथ्वी के दुख से दुखित होकर सूर्य को दंड देने के लिए इन्द्रदेव दौड़ पड़े । बादल गरज रहे हैं जैसे रण नगारे बज रहे हैं और बिजली की कड़क जैसे वज्रपात की ध्वनि हो । यह इन्द्र-धनुप नहीं है, सुरपति का चाप है, बूँदें नहीं हैं, यह बाणवर्षा है । पपीहे, मेढक और मोर नहीं बोलते, इन्द्र के भट सूर्य को ललकार रहे हैं । यह बिजली नहीं है, वरन् इन्द्र महाराज तलवार खोले घूम रहे हैं ।)

यहाँ तक तो ठीक है, परन्तु जब केशव पौराणिक गाथाओं का आश्रय लेते हैं और उसके बल पर चमत्कार उत्पन्न करते हैं, तो वे अपने प्रकृत रूप में हमारे सामने आते हैं—

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर कीसी । उर में हम चंद्रप्रभा सम दीसी
बरषा न सुनौ किलकै कह काली । सब जानत है महिमा अलि माली

(यह वर्षा अत्रिपत्नी अनुसूया-सी है क्योंकि जैसे अनुसूया के गर्भ में सोम की प्रभा थी वैसी ही इस बादल में भी चन्द्रप्रभा छिपी है ।

यह वर्षा के शब्द नहीं हैं, वरन् काली सुन्दर शब्दों से हँस रही है। जैसे काली की समस्त महिमा महादेव ही जानते हैं, वैसे ही वर्षा की समस्त महिमा सर्प-समूह ही जानता है।)

परन्तु वर्षाकल नालियों को अभिसारिका बनाना तो कल्पना की विडंबना ही होगी—

अभिसारिनी सी समझै परनारी। सतमारग मेटन की अधिकारी
मति लोभ महामद मोह छई है। द्विजराज सुमित्र प्रदोष मई है

(इस वर्षा से बनी हुई नालियाँ परकीयाभिसारिका-सी हैं। जैसे वे स्वधर्म को मेटती हैं, वैसी ही इस वर्षा में बड़ी-बड़ी नालियों ने अच्छे मार्गों के मिटाने का अधिकार पाया है। यह वर्षा पापी की लोभमद से भ्रष्ट बुद्धि है जो ब्राह्मण और अच्छे मित्रों को दोष देती है—यह चन्द्रमा और सूर्य को अंधकार में छिपाये रहती है) शरदवर्णन भी अलंकारों पर आश्रित है। शरद के चार रूपकों का प्रयोग किया गया है—सुन्दरी युवती, नारद की मति, पतिव्रता स्त्रियों का सच्चा प्रेम और वृद्ध दासी। यहाँ उद्दीपन विभाव की पुष्टि की ओर से भी ध्यान हटा लिया गया है।

दन्तावलि कुंद समान गनो। चंद्रानन कुंतल भौंर घनो
भौंहे धनु खंजन नैन मनो। राजीवनि ज्यों पददानि मनो
हारावलि नीरज हीय रमैं। जनु लीन पयोधर अम्बर में
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे। हँसी गति केशव चित्त हरे

(इस शरद सुन्दरी के कुन्द पुष्प हैं, चन्द्रमा मुख, बेटा भ्रमर-समूह।. नवीन बने हुए धनुष ये भौंहें हैं, हाथ-पाँव लाल कमल हैं। कुमुद पुष्प या मोतियों का हृदय पर पड़ा हार समझो—कुचों को कपड़ों में छिपाए है। चाँदनी ही का चन्दन तन पर लगाए हुए मन को हरती है।)

श्री नारद की दरसै मति सी। लोपै तम ताप अतीरति सी

(जैसे नारद की बुद्धि से अज्ञानांधकार, त्रिताप और अपयश का लोप होता है वैसे ही इस शरद से भी वर्षा का अंधकार, सिंह के सूर्य का ताप और अकृतज्ञता का लोप होता है।)

मानो पतिदेवन की रति सी। सन्मारग की समझौ गति सी

(यह शरद पतिव्रताओं के सच्चे प्रेम के समान है। जैसे उनके कारण अन्य स्त्रियों को भी सन्मार्ग सूझ पड़ता है, वैसे ही शरद के आने से ही मार्ग चलने योग्य हो गये हैं।)

लक्ष्मण दासी वृद्ध-सी आई शरद सुजाति
मनहुं जगावन को हमहिं बीते बरषा राति

(यहाँ शरद की उपमा वृद्ध दासी से दी गई है। जैसे वृद्ध दासी प्रभात में आकर राजकुमारों को जगाती है, वैसे ही यह शरद भी हमें वर्षारूपी रात बीतने पर जगा कर कर्मरत करने आई है।)

सूर्योदय का वर्णन भी देखिये—

कुछ राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रय। चार चकोर चिता सी लसै

पसरे कर कुमुदिनी काज मनो
किधौं पद्मिनी सी सुखदेन घनो
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे
जिय जानि चकोर फँदानि ठगे

व्योम में मुनि देखिये अति लालश्री मुख साजहीं
सिंधु में बड़वानि की जनु ज्वालमाल विराजहीं
पद्मरागिनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई
सूर बागिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई

(लाल सूर्य इस तरह शोभा देते हैं मानों लक्ष्मण के अनुराग से भरे हैं। सूर्य को देखते ही कुमुदिनी अपने चित्त में डरती है

और चारों ओर चकोरों के लिए तो चिता के ही समान है। सूर्य की फैली किरणें मानों उसने कुमुदिनी को पकड़ने के लिए हाथ फैलाये हैं या कमलिनी को अति सुख देने के लिए। सूर्य की किरणों के जाल में फँसने के डर के भाग गये हैं और चकोर भी ठगा-सा हो रहा है। आकाश में लाल सूर्य लगता है कि समुद्र में वड़वाग्नि की ज्वालाओं का समूह एकत्र होकर विराज रहा है अथवा सूर्य के घोड़ों के अति तीक्ष्ण सुमों से चूर्ण की हुई पद्मराग मणियों की धूल से सारा आकाश पूरित-सा हो गया है।)

केशव का पंपासर-वर्णन है—

अति सुंदर सीतल सोम बसै। जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै
बहु पंकज पक्षि विराजत हैं। रघुनाथ विलोकत लाजत हैं
सिगरी ऋतु सोभित शुभ्र जहीं। लह ग्रीषम पै न प्रवेश सही
नव नीरज नीर तहाँ सरसै। सिय के शुभ लोचन से दरसै

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है
ता पर भौंर भलो मनरोचन लोक विलोचन को रुचिरौ है
देखि दई उपमा जलदे विन दीरघ देवन के मन मोहै
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै

मिलि चक्रित चंदन वात बहै, अति मोहत न्यायमन मति को
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चंद्र निशाचर-पद्धति को
प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानि नहीं इनसी गति को
दुख देत तड़ाग तुम्हें न बने कमलाकर है कमलापति को

(पंपासर सुन्दर और शीतल है और वहाँ अनेक रूप से लोभ बसता है। वहाँ बहुत प्रकार के कमल और पक्षी हैं पर वे सब श्री रघुनाथ को देखकर लज्जित होते हैं। वहाँ समस्त ऋतुएँ शोभती हैं पर ग्रिष्म ऋतु नहीं होती। जल में नवीन खिले कमल

सीता के सुन्दर नेत्रों के समान दिखलाई पड़ते हैं। सुन्दर सफेद कमल में पीली छतरी है। उस पर सुन्दर भौंरा बैठा है इसको देखकर जल-देवियों ने ऐसी उपमा दी जिसे सुनकर बड़े-बड़े देवताओं के मन मोहित हो गए।—कि इस पीली छतरी पर काला भौंरा ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्मा के सिर पर विष्णु विराजमान हों। हे कमलाकर पम्पासर, कमलापति श्रीराम को तुम क्यों दुःख देते हो, यह बात तुम्हें योग्य नहीं क्योंकि तुम कमलाकर हो, ये कमलापति, इससे तुम्हारे दामाद हुए। यदि कहो कि मलय पवन दुःख देता है, तो वह तो जड़ है, दुष्ट सर्प के संग से वह विषैला है। चन्द्रमा जो इनके चित्त को दग्ध करता है, सो भी ठीक, है तो आखिर वह रात्रिचर! शुकपिकादि पक्षी मधुर स्वर से सीता की याद दिलाकर उन्हें दुःख देते हैं पर वे जड़ हैं, इनकी विरह दशा को नहीं जानते। परन्तु तुम सम्बन्धी होकर क्यों ऐसी बात करते हो जो भगवान श्रीराम को दुखित करती है, यदि हम इस वर्णन का विश्लेषण करें, तो हमें केशव की प्रकृति सम्बन्धी धारणा का पता चलेगा।)

१ली पंक्ति—इसमें ध्वनि से सरोवर की शीतलता और मनमोहकता का वर्णन है।

२री पंक्ति—यहाँ रूढ़ि से सहारा लिया गया है जहाँ कमलों और पक्षियों की उपमा अंगों से दी जाती है। यहाँ भी अभिधा का सहारा न लेकर लक्षणा का सहारा लिया गया है।

३री—प्रकृति के सम्बन्ध में रूढ़ि—शीतलता की व्यंजना—क्लिष्ट कल्पना द्वारा अभिधेय की पूर्ति।

४थी—उपमा

पद १—यहाँ उत्प्रेक्षा ही ध्येय है, वह भी कल्पना की खींचा-तानी से सिद्ध की गई है। सारे सरोवर में से केवल कमल पर ही दृष्टि गड़ा दी गई है।

पद २—इसमें वक्रोक्ति का सहारा लेकर (कमलाकर= पंपासर, कमला का पिता जो राम को ब्याहो है) राम को पंपासर का दामाद बताया है। एक अत्यन्त क्लिष्ट कल्पना—राम तुम्हारे दामाद हैं, तुम इन्हें दुःख क्यों देते हो ?

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि (१) केशव ने प्रकृति को काव्य-रूढ़ियों और अलंकारों के भीतर से देखा है, (२) अलंकारों और विशेषतः श्लेष के कारण उनके प्रकृति वर्णन में प्रकृति का कोई सौन्दर्य प्रस्फुटित नहीं होता, (३) उन्होंने प्रकृति के निम्न प्रयोग किये हैं—(१) नामोल्लेख-प्रणाली, जैसे तीसरे प्रकाश के वन-वर्णन में—

तरु तालीप तमाल ताल हिंताल मनोहर
मंजुल मंजुल लकुच बकुल के नारियर
एला लता लवङ्गसङ्ग पुंगीफल सोहै
सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै
शुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूर गन
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन

(२) उद्दीपन विभाव के लिए प्रकृति का वर्णन, (३) श्लेष, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि के साथ क्लिष्ट कल्पना, (४) प्रकृति को द्रष्टा के दृष्टिकोण से देखना, जैसे

कछु राजत सूरज अरुण खरे
जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे

यहाँ प्रकृति मानसिक अवस्था का प्रतीक है, (५) प्रकृति में कल्पनात्मक सौन्दर्य-निरीक्षण, जैसे

चढ्यो गगनतरु धाय दिनकर बानर अरुण मुख
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन

(६) नीति आदि की दृष्टि के साथ जैसे भागवत अथवा मानस में, परन्तु यह प्रयोग बहुत कम है, जैसे—

१—बरनत केशव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि
कुपुरुष सेवा ज्यों भई सन्तत मिथ्या दृष्टि
२—जहीं वारुणी की करी रंचक रुचि द्विजराज
तहीं कियो भगवंत विन संपति सोभा साज

अधिकांश प्रकृतिवर्णन (२)(३) के अंतर्गत हैं। ३०वें प्रकाश का चंद्रवर्णन (३) का अच्छा उदाहरण है—

(सीता)

फूलन की शुभ गेंद नई है। सूंघि शची जनु रची दई है
दर्पण शशि श्री रति को है। आसव काम महीपति को है
मोतिन को श्रुति भूषण जानो। भूलि गई रवि की तिय मानो
(उत्प्रेक्षा)

(राम)

अङ्गद को पितु सो सुनिये जू। सोहत कण्ठ सङ्ग लिए जू
(केवल श्लेष के बल पर)

(सीता)

भूप मनोमय छत्र धर्‍यो ज्यों। सोक वियोगिनि को दिसयो ज्यों
देव नदी जल राम कह्यौ जू। मानहु फूलि सरोज रह्यौ जू
शङ्ख किधौं हरि के कर सोहै। अंबर सागर ते निकसो है

(राम)

चारु चंद्रिका सिंधु में शीतल स्वच्छ सतेज
मनो शेषमय शोभित है हरिणधिष्ठित सेज

(केशोदास)

केशोदास है उदास कमलाकर सो कर
शोषक प्रदोष ताप तमोगुण तारिये
अमृत अशेष के विशेष भाव बरसत
कोकनद मोह चंद्र खंजन विचारिये

परम पुरुष यह विमुख परुष सब
सुमुख सुखद विदुषक उर धारिये
हरि हैं री हिये में न हरिन हरिणनैनी
चंद्रमा न चंद्रमुखी नारद निहारिये

ऊपर के अवतरण में उत्प्रेक्षाएं इस प्रकार हैं—

१—शची की फूल की गेंद है चंद्रमा

२—रति का दर्पण है

३—सूर्यपत्नी का कर्णाभूषण है

४—तारा उसके साथ है, इससे वह अंगद का पिता बालि जान पड़ता है

५—छत्रयुत कामदेव है

६—स्वर्गंगा का कमल है

७—अंबररूपी समुद्र से निकलता हुआ भगवान का आयुध शंख है

८—इस चंद्रमारूपी क्षीरसागर में शेषशय्या पर मृगांक के मिस स्वयं विष्णु विराज रहे हैं

९—यह चन्द्रमा नहीं है, ऋषि नारद है

यह स्पष्ट है कि केशव का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण अधिकांश में क्लिष्ट है। वह श्रीहर्ष से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। यह हर्ष का विषय है कि रीतिकाल के कवियों ने उनके दृष्टिकोण को संपूर्णतः नहीं अपनाया। नहीं तो हमें प्रकृति के सारे वर्णन श्लेष और उत्प्रेक्षा से भरे हुए ही मिलते। रीतिकाल का भी अधिकांश वर्णन उद्दीपन विभाव की पुष्टि के लिए हुआ है और सेनापति जैसे एक दो कवियों को छोड़कर दूसरे कवियों ने रूढ़ि का ही अधिक पालन किया है। उनका प्रकृति से सीधा आत्मानुभव संबन्ध नहीं जान पड़ता। परन्तु फिर भी वहाँ वह विकृति है जो केशव के काव्य में दिखलाई पड़ती है। पांडित्य

से प्रकृति को देखने का यही फल हो सकता था। वाल्मीकि में "प्रवर्षण" पर्वत का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। इसे केशव के वर्णन से मिलाइये—

देख्यो सुभ गिरिवर, सकल सोभधर, फूल बरन बहु फलनि फरे
सँग सरभ ऋच्छ जन, केसरि के गन, मनहु चरन सुग्रीव परे
सँग सिवा विराजै, गजमुख गाजै, परभृत बोलै चित्त हरे
सिर सुभ चंद्रक धर, परम दिगम्बर, मनोहर अहिराज धरे

इसमें श्लेष से पुष्ट उल्लेख अलंकार है। श्लेष इस प्रकार है—

१—सरभ (१) पशु (२) वानरों की एक जाति
२—ऋच्छ (१) रीछ (२) जामवंत
३—केसरी (१) सिंह (२) वानरों की एक जाति
४—सिवा (१) शृगाली (२) पार्वती
५—गजमुख (१) गणेश (२) मुख्य मुख्य जाति के हाथी
६—परभृत (१) कोमल (२) बड़े-बड़े सेवक, अर्थात् नन्दी, भृंगी, इत्यादि
७—चंद्रक (१) जल (२) चंद्रमा
८—दिगम्बर (१) दिशाएँ जिसका परिधान हों, बहुत बड़ा नंगा, (२) वस्त्ररहित
९—अहिराज (१) बड़े सर्प, (२) वासुकि।

पहली दो पंक्तियाँ

अर्थ

श्रीरामजी ने उस पवित्र पहाड़ को देखा कि सब प्रकार की शोभा से युक्त है, अनेक रङ्ग के फूल फूले हैं और बहुत प्रकार के फल भी लगे हैं। वह पहाड़ अनेक वनपशु, रीछ और सिंहों से युक्त है। ऐसा जान पड़ता जैसे सुग्रीव वानर, जामवन्त और केशरी जाति के वानरों को लिए हुए सुग्रीव राम के चरणों में पड़े हैं।

अंतिम दो पंक्तियाँ

इस पर्वत में शृगाल भी हैं, बड़े बड़े हाथी भी गरजते हैं, कोयल की बोली चित्त हरती है। इस पर्वत पर जलाशय भी है और यह अति विस्तृत है। यहाँ बड़े-बड़े सर्प रहते हैं।

यह पर्वत शिव है, साथ में शिवा (पार्वती) और गणेश है। नन्दी-भृंगी आदि हैं जो स्तुति-गान से उनको प्रसन्न करते हैं। शिवजी के सिर पर चंद्रमा है। वे परम दिगम्बर हैं और वासुकि को धारण किए हुए हैं।

इस प्रकार मस्तिष्क पर बल देकर, साम्यवाची शब्दों के सहारे या श्लेष से कविता को क्लिष्ट बना देना, केशव के बायें हाथ का खेल है। इससे प्रकृति का सारा सौन्दर्य ताश के महल की भाँति ढह पड़ता है।

अंत में डा० बड़थ्वाल के शब्दों में —"प्रकृति के जितने भी वर्णन उन्होंने (केशव ने) दिये हैं, वे प्रकृति-निरीक्षण का जरा भी परिचय नहीं देते। × × उन्होंने × प्रकृति का परिचय कवि-परंपरा से पाया है × × × मालूम होता है कि प्रकृति के बीच में वे आँखें बन्द करके जाते थे। क्योंकि प्रकृति-दर्शन से प्रकृत कवि के हृदय की भाँति उनका हृदय आनन्द से नाच नहीं उठता। प्रकृति के सौन्दर्य से उनका हृदय द्रवीभूत नहीं होता। उनके हृदय का वह विस्तार नहीं है जो प्रकृति में भी मनुष्य के सुख-दुख के लिए सहानुभूति ढूँढ सकता है, जीवन का स्पंदन देख सकता है, परमात्मा के अंतर्हित स्वरूप का आभास पा सकता है। फूल उनके लिए निरुद्देश्य खिलते हैं, नदियाँ बेमतलब बहती हैं, वायु निरर्थक चलती है। प्रकृति में वे कोई सौन्दर्य नहीं देखते, वे उन्हें भयानक लगती है, वर्षा काली का स्वरूप सामने लाती है और उदीयमान अरुणिमामय सूर्य कापालिक के शोणित भरे खप्पर का स्वरूप उपस्थित करता है। प्रकृति की सुन्दरता केवल पुस्तकों

में लिखी सुन्दरता है। सीताजी के वीणावादन से मुग्ध होकर घिर आये हुए मयूर की शिखा, सूए की नाक, कोकिल का कंठ, हरिणी की आँखें, मराल की मंद-मंद चाल चलने वाले पाँव इसलिए उनके राम से इनाम नहीं पाते कि ये वस्तुएँ वस्तुतः सुन्दर हैं वल्कि इसलिए कि कवि इन्हें परंपरा से सुन्दर मानते चले आये हैं, नहीं तो इनमें कोई सुन्दरता नहीं। इसलिए सीताजी के मुख की प्रशंसा करते हुए वे कह गये हैं—

देखे भावे मुख, अनदेखे कमलचंद

कमल और चंद्रमा देखने में सुन्दर नहीं लगते ? हद हो गई हृदयहीनता को। सुधी आलोचक पंडित-प्रवर स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"वन, नदी पर्वत आदि इन याचक कवियों को क्या दे देते जो ये उनका वर्णन करते ! जायसी, सूर, तुलसी आदि स्वच्छन्द कवियों ने हिंदी कविता को उठाकर खड़ा ही किया था कि केशव ने पशुओं की भाँति उसके पैर छानकर गंदे बाजारों में चरने के लिए छोड़ दिया। फिर क्या था, नायिकाओं के पैरों में मखमल के गुदगुदे बिछौने और गुलाब के फूल की पंखड़ियाँ गड़ने लगीं। यदि कोई षट्ऋत की लीक पीटने खड़े हुए तो कहीं शरद की चाँदनी से किसी विरहिणी का शरीर जलाया, कहीं कोयल की कूक से कलेजों के टुकड़े किये, कहीं किसी को प्रमोद में मत्त किया, क्योंकि उन्हें तो इन ऋतुओं के वर्णन को उद्दीपन मानकर संयोग या वियोग-शृङ्गार के अंतर्गत ही लाना था। उनकी दृष्टि प्रकृति के इन व्यापारों पर तो जमती ही नहीं थी, नायक या नायिका पर ही दौड़-दौड़ कर जाती थी। अतः उनके नायक-नायिका की अवस्था विशेष और प्रकृति की दो-चार इनी-गिनी वस्तुओं से जो सम्बन्ध होता था, उसी को दिखाकर वे किनारे हो जाते थे।"

(नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग १४, संख्या १०)

इतना होने पर कहीं-कहीं केशव में प्राकृतिक सुन्दर चित्र उपस्थित हो जाते हैं, ये ऐसे स्थलों पर जहाँ से समसामयिक काव्य से प्रभावित हैं या जहाँ उन्होंने कल्पना के घोड़ों की रास अपने हाथ में रखी है। सूरदास का एक पद है—

उगत अरुन विगत सर्वरी ससांक किरन—
हीय दीय दीपक मलीन छीन द्युति समूह तारे

इसी जैसा कुछ वर्णन केशव ने प्रातःकाल जागरण का किया है—

तरनि किरन उदित भई दीपज्योति मलिन गई
सदय हृदय वोध उदय ज्यौं कुवुद्धि नासै
चक्रवाक निकट गई चकई मन मुदित भई
जैसे निज ज्योति पाय जीव ज्योति भासै

उन्होंने आक्षेपालंकार में जो वारहमासा लिखा है वह भी सत्य है। "रसिकप्रिया" में घने अँधेरे बादलों का चित्र देखिये—

राहिन्ह आइ चले घरकौ दसहूँ दिसि मेघ महामिलि आए
दूसरौ वोलत ही समुझै कहिके सब यौं छिति मैं तम छाए

परन्तु ऐसे वर्णन कितने हैं!

———

५

केशव की भाषा और शैली

केशव के समय तक हिन्दी भाषा के विकास का पूर्ण इतिहास हम नहीं बना पाए हैं, परन्तु उनसे पहले व्रजभाषा साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, यह निश्चय है। यही नहीं उसका पर्याप्त विकास भी हो चला था। साहित्य के क्षेत्र में तब तक अन्य कई भाषाएँ भी आ चुकी थीं। वीरगाथा ने हमें डिंगल का काव्य दिया था। कबीर और अन्य संत कवियों की कविता में खड़ी बोली का अन्य बोलियों से मिश्रित रूप—विशेषकर पूर्वी और पंजाबी। इसे पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने सधुक्कड़ी भाषा कहा है। कबीर ने—मेरी बोली पूरबी—लिख कर अपने काव्य की भाषा को काशी की बोली बतलाया है। अवधी में सूफी कवि लिख चुके थे। तुलसी ने जायसी की भाषा को संस्कृत की गरिमा से भर कर मानस की साहित्यिक अवधी का महल खड़ा किया था। परन्तु व्रजभाषा ने विशेष साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। इसी से साफ पता लगता है कि तुलसी की अधिक रचनाएँ इसी व्रजभाषा में हैं। जान पड़ता है मानस के बाद उन्होंने व्रजभाषा काव्य का (विशेषकर सूर के काव्य का) अच्छा अध्ययन किया और उसे अपना माध्यम बनाया। यह अवधी पर व्रजभाषा की विजय है। कन्नौजी, बुन्देलखण्डी और व्रजभाषा के क्षेत्र परस्पर मिले हुए हैं, अतः साहित्य में व्रजभाषा ने ही इन क्षेत्रों में आधिपत्य कर लिया और शेष भाषाओं का साहित्य जन-गीतों से आगे नहीं बढ़ सका। ऐसा क्यों हुआ,

इसका भी कारण है। यह युग कृष्ण-भक्ति के प्रचार का था। काव्य और उपदेश इस प्रचार के माध्यम थे। व्रज कृष्ण-भक्ति का केन्द्र था और यहीं विभिन्न सम्प्रदायों के भीतर से कृष्ण-काव्य का साहित्य सामने आया। यह शीघ्र ही सीमान्त के भाषा प्रान्तों में लोकप्रिय हो गया और उसी के अनुकरण में उसी की भाषा में कविता की गई।

इस प्रकार सामयिक व्यवस्था और परम्परा से केशव को व्रजभाषा मिली परन्तु वे स्वयं बुन्देलखण्ड में रहे, अतः उनपर बुन्देलखण्डी की छाप होना आवश्यक था। फारसी की शब्दावली का प्रयोग सूर और तुलसी में भी है, केशव भी उससे नहीं बचे। परन्तु फिर केशव की भाषा असाधारण और क्लिष्ट क्यों है, यह प्रश्न है। यह असाधारणता कई प्रकार की है—

१—असाधारण प्रयोग जैसे सुख का प्रयोग सहज के अर्थ में।

२—निरर्थक प्रयोग जैसे जू, सु

३—लिंग-भेद—देवता शब्द बराबर स्त्रीलिङ्ग में लिखा गया है।

४—ठेठ बुन्देलखण्डी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग जैसे, स्यो, गौर, मदाइन।

५—संस्कृत के व्याकरण के ढंग के प्रयोग।

कहुँ आपुन अघ अधगति चलंति
फल पतितन कहँ अरध फलंति

६—तुक के लिए असाधारण प्रयोग

जहँ तहँ लसत महा मद मत्त
वर वारन वार न दलदत्त

यहाँ दलदत्त का अर्थ है सेना को दलन में। वारन श्लेष है, हाथी, देर नहीं लगती (वार+न)

७—वीरगाथा के शब्दों और तुकों का प्रयोग—

देखि बाग अनुराग अज्जिय
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय

८—अप्रचलित प्रयोग जैसे ब्रह्मा के लिए सरसिज योनि, सूरन (सुग्रीव)

९—अन्वय की कठिनाई समास रूप से थोड़े में बहुत भर देने का प्रयत्न—

केहि कारण पठये यहि निकेत
निज देन लेन संदेह हेत

= निज संदेश देन—लेन हेत संदेश

१०—व्यर्थ प्रयोग जैसे निदान

११—गलत प्रयोग हे = थे, सोदर = सहोदर, जीव, जी, चार = चर

१२—संदिग्ध प्रयोग बिलगु = बुराई

१३—ठेठ हिन्दी शब्दों की संधि सोउव = सो + अव

१४—नए शब्द निघृन = जिसे घृणा न लगे

इस प्रकार की अनेक विशेषताएँ केशव के काव्य को जटिल बना देती हैं। रसिकप्रिया केशव का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। उसकी भाषा इतनी असंस्कृत नहीं है, जितनी रामचन्द्रिका की। कारण यह है कि रामचन्द्रिका में केशव प्रत्येक प्रकार असाधारण बनना चाहते हैं। उन्होंने संस्कृत वर्णिक छन्दों का बड़ी मात्रा में प्रयोग किया है—इन छन्दों के चोखटे में हिन्दी के अधिक शब्द बिगड़ गए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर केशव यह भी चेष्टा नहीं करते कि इन छन्दों को माँज ही लें। केवल उदाहरण के लिए एक दो छन्द लिख देते हैं। अतः उनकी शैली सरल और सुबोध नहीं हो पाती। अनेक मात्रिक छंद भी पहली बार केशव

ने ही प्रयोग किये हैं, यहाँ भी अभ्यास-विरलता के कारण कच्चाई है।

कुछ छन्दों का उदाहरण देने से बात और स्पष्ट हो जायगी कवि भरद्वाज के रूप का वर्णन करता है—

प्रशयित रज राजैं हर्ष वर्षा समै से
विरल जटन शाखी स्वर्नदी कूल कैसे
जगमग दरशाईं सूर के अंशु ऐसे
सुरग नरक हंता नाम श्रीराम कैसे

(१) प्रशयित = संस्कृत।

रज = रजोगुण, धूल (भरद्वाज वर्षा के हर्षमय समय के समान है। जब धूल नहीं रहती है)

राजैं = विराजते हैं

हर्ष = हर्षित, हर्षमय (उनके मन में रजोगुण प्रशायित है)

से = जैसे

(२) शाखी = वृक्ष (वह गंगा किनारे के ऐसे वृद्ध वृक्षों की तरह है जिनकी जड़ें प्रगट हो गई हैं)

स्वर्नदी = स्वर्ग नदी = गंगा (भरद्वाज की जटाएँ भी प्रगट हैं)

(३) जगमग दरशाईं = प्रकाशवान, दिखलाई पड़ते हैं। (सूर्य की किरण की तरह से हैं, दीप्त हैं या जग-मार्ग दिखाते हैं)

(४) सुरग = स्वर्ग का ठेठ

सुरग नरक हन्ता = स्वर्ग नरक का नाश कर मोक्ष देने वाले (श्रीराम नाम जो मोक्ष की प्राप्ति कराता है)

(५) नाम श्रीराम = श्रीराम नाम

यहाँ भाषा-विनिमय विचित्रताओं के साथ कवि का वैचित्र्य भी स्पष्ट है जैसे श्लेष का प्रयोग (जटन = जड़े, जटा) रज (धूल, रजोगुण); दूर की सूझ (विरल जटन शाखी स्वर्नदी कूल) और क्लिष्ट कल्पना = सुरग नरक हंता। जहाँ ये तीनों बातें मिल गईं और अभिव्यक्ति असम्पूर्ण है वहाँ केशव का काव्यकूट ही समझिए। ऐसे स्थलों पर पाठक को बुद्धि की बड़ी परीक्षा हो जाती है।

सुग्रीव राम को सीता का पट देते हैं—

पंजर कै खंजरीट नैनन को केशोदास कैधौं मीन मानस को जहु है कि जारु है। अंग को कि अंगराग गेंडुवा कि गइसुई किधौं कोट जीव ही को उर को कि हार है॥ बंधन हमारो काम केलि को कि ताड़िवे को ताजनो को विचार को, व्यजन विचारु है। मान की जमनिका कै कंजमुख मूंदिवे को सीताजू को उत्तरीय सब सुख सारु है॥

भाषा-विषयक परिस्थिति—

(१) फारसी का शब्द ताजनो (ताजियाना) = कोड़न
(२) गेडुआ = खास बुन्देली शब्द = तकिया
(३) गलसुई = " " = गले के नीचे लगाने का छोटा गोल और मुलायम तकिया
(४) जमनिका = सं० यवनिका
(५) तर्क कारण जाऊ, हारु, विचारु, भारु यहाँ जारु = जाल
(६) उत्तरीय सं० = ओढ़नी

कल्पना और व्यंजना—

(१) क्या यह मेरे खंजन रूपी नेत्रों के लिए पिंजड़ा है अर्थात् जब यह सीताजी के बदन पर रहता था तो नयन इसी में उलझ जाते थे।

(२) मन रूपी मछली के लिए जाल है या मेरा मन इसी के सहारे जीवित है।

(३) मायाजाल है अर्थात मेरे मन को फाँस लेता है।

(४) इसके अंग से लगते ही ऐसे शीतल हो जाता है जैसे अंगराग का लेप कर लिया है।

(५) सुख प्रदान करता है जैसे तकिया गलसुई है।

(६) प्राण-रक्षक जीवित रहो।

(७) हृदय के लिए शोभाप्रद हार है।

(८) जब मैं कामकेलि करता था तो यह हाथों का बंधन हो जाता था।

(९) यह काम-विचारोत्तेजक है, जैसे कोड़ा है या व्यजन (पंखा)।

(१०) मान के समय सीता इसी से कमल-मुख मूँदती थी।

इस तरह यह स्पष्ट है कि भाषा से अधिक कठिनाई क्लिष्ट कल्पना की है—साधारण पाठक की कल्पना इतनी उदात्त नहीं होती। इस कल्पना का आधार रीतिशास्त्र विषयक ज्ञान है, अतः पाठक को रीतिकाव्य की रूढ़ियों को जानना भी अपेक्षित हो जाता है, जैसे "अंग को कि अंगराग" में अंदर की शीतलता अपेक्षित है, 'तड़िबे को ताजनो को विचारि को' में उसकी कामोद्रेकता।

क्लिष्ट कल्पना का एक उदाहरण है लक्ष्मण पम्पासर से कहते हैं कि तुम कमलाकर हो (नयनों की खान, कमला के घर)। राम कमलापति (लक्ष्मी के पति, विष्णु) हैं, अतः यह तुम्हारे दामाद हुए, तुम ससुर, इससे इन्हें दुख न दो (दुख देत तड़ाग तुम्हें न बनै कमलाकर ह्वै कमलापति को)। इसमें सारी क्लिष्ट कल्पना "कमलाकर" और "कमलापति" पर खड़ी की गई है।

केशव कमल की छतरी के ऊपर भौंरे को देखते हैं तो एक असाधारण उपमा ही उन्हें सूझती है—

सुन्दर सेत सरोरुह में कर हाटक हाटक की कोहै
तापर भौंर भलो मनरोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै
दीख दई उपमा जल देविन दीरव देवन के मन मोहै
केशव केशव राय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै

(जैसे कमलासन = ब्रह्मा; श्वेत पँखुड़ियों के बीच में छतरी है, वह—केशवराय = विष्णु = नीलाम्बर विष्णु ब्रह्मा के सिर पर विराजमान हैं) इस प्रकार की उपमा स्पष्टतया उत्प्रेक्षा मात्र हैं—भला विष्णु ब्रह्मा के सिर पर क्यों वैठें, और वैठें ही, तो कौन सुन्दर वात होगी। भाषा का ऊबड़-खावड़पन एक दूसरी कठिनाई पैदा करता है। दीरघ देवन = वड़े वड़े देव।

लोक विलोचन की रुचि रोहै = लोक-नेत्रों की रुचि पर चढ़ जाता है—दर्शकों को अच्छा मालूम होता है। रोहै = आरो है (आरोहण करता है)।

केशव का काव्य पांडित्य-जन्य है उसको समझने के लिए संस्कृत पंडित का ज्ञान चाहिए राम करुण (करुण नामक पुण्य-वृक्ष) से याचना करते हैं—

कहि केशव याचक के अरि चम्पक शोक अशोक भये हरि कै
लखि केतक केतकि जाति गुलाव ते तीक्ष्ण जानि तजे डरि कै
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरि कै
सिय को कछु सोधु कहे करुणामय हे करुणा! करुणा करि कै

यहाँ करुणामय, करुण तो "करुण" वृक्ष के शब्द से ही कल्पित है। याचक के अरि चम्पक = काव्य-प्रसिद्ध है कि मधु-याचक भ्रमर चम्पक पर नहीं बैठता।

शोक अशोक भये हरि के = अशोक शब्द का अर्थ है, जिसे शोक नहीं, अतः अशोक को दूसरे के शोक का क्या अनुभव होगा?

केतक = केवड़ा तीनों में काँटे होते हैं अतः कल्पना
केवकि = केतकी की कि यह सब तीक्ष्ण स्वभाव
जाति = जायफल के हैं, इससे पूछते डरते हैं

यह सब बुद्धि का चमत्कार भले ही हो, रसात्मक काव्य (कविता) नहीं है।

सुगंध को केशव कहेंगे सौगन्ध तो भला कौन अर्थ लगा सकेगा (गोदावरी वर्णन), कंजज (ब्रह्मा), हरिमंदिर (समुद्र, वैकुण्ठ), विषमय (जलमय, मवाल) इसी प्रकार की चेष्टाएँ हैं।

✓सच तो यह है कि केशव का सारा काव्य शब्द-कोष पर और भाव की वक्रता पर खड़ा है। पहले का रूप है श्लेष, दूसरे का विरोधाभास। श्लेष के युक्त विरोधाभास से कितने ही उदाहरण पग-पग पर मिलेंगे। गोदावरी अंग को ही लीजिए। कहते हैं—

निपट पतिव्रत धरणी (यहाँ पतिव्रत-धारण का अर्थ है समुद्र विमुख रहना) निगति सदा गति सुनिये। अगति महा-पति गुनिये (यहाँ सारी कल्पना 'गति' 'निगति' 'अगति' पर आश्रित है। निगति = जिसकी गति नहीं (पापी), गति (मोक्ष), अगति = गतिहीनता, स्थिरता, निश्चलता । गोदावरी की यह विचित्रता है कि जिसकी गति नहीं हो सकती उसको गति देती है और अपने पति को गति-रहित रखती है (विरोधाभास)।

सं० निजेच्छया (निज इच्छा से)
सम्भोग = भोग-विलास की वस्तुएँ
सविलास = विलास-पूर्वक, भली भाँति, सहज ही।

✓इस प्रकार के अनेक स्वतंत्र और परंपरारहित प्रयोग केशव के काव्य को कठिन बना देते हैं। वास्तव में, अपनी भाषाशैली के कारण ही उन्हें "कठिन काव्य के प्रेत" कहा गया है।

भाषा-काठिन्य का एक कारण यह भी है कि केशव ने ब्रज-भाषा में अपनी प्रांतीय बोली बुन्देलखंडी का भी बड़ा पुट दे

दिया है—शब्द-कोष का ही नहीं, मुहावरों का भी, जिनकी आत्मा से व्रजभाषा किंचित भी परिचित नहीं है। बाबू भगवान-दास के अनुसार कुछ बुन्देली शब्द ये हैं—पंचम (अर्थ, बुन्देला), खारक (छोहारा), मरुकर (कठिनता से), चोली (पान रखने की पिटारी), छीपे (छुपे), छंदी (तंग गली को कहते हैं जो एक ओर से बन्द हो), स्यों (सहित), उपदि (अपनी पसंद से), घोरिला (खूँटी), बरँगा (कड़ी), हुगई (ओसारा), गेहुए (तकिया), गलसुई (गाल के नीचे रखने का छोटा तकिया), सुख (सहज ही) गौरमदाइन (इंद्रधनुष)। इसके अतिरिक्त स्वयं व्रजभाषा के अत्यंत अपरिचित शब्द नारी (समूह), ऐलौ (आड़) जैसे उनकी कविता को असाधारण बना देते हैं। विदेशी शब्द कम हैं और उन्हें तद्भव रूप में ही ग्रहण किया गया है।

भाषा के बाद शैली पर विचार करना समीचीन होगा। शैली की दृष्टि से तो अनेक दोष हम गिना सकते हैं। अपने ग्रंथों में दोनों के जितने उदाहरण गिनाये हैं, वे सब उनकी कविता में ही निकाले जा सकते हैं। उन्होंने अधिकांश स्थलों पर संस्कृत के भावों और विचारों का अनुवादमात्र किया है और समास-पद्धति को विशेष रूप से अपनाने की चेष्टा की है—छंद भी छोटे-छोटे चुने हैं और यह प्रयत्न भी किया है कि इन छोटे छंदों के गागर में ही सागर भर दिया जाय। इसका फल यह हुआ कि उनका बहुत बड़ा काव्य "असमर्थ" दोष से दूषित है। वे कहते हैं —

पानी पावक पवन प्रभु, ज्यौं असाधु त्यौं साधु

कहना यह है कि पानी, पावक, पवन और प्रभु साधु और असाधु दोनों से समान ही व्यवहार करते हैं, परन्तु "ज्यौं असाधु त्यौं साधु" कहने से इस बात का कोई अर्थ नहीं निकलता

इसी प्रकार कहीं-कहीं शब्दों के अप्रसिद्ध अर्थों का भी प्रयोग मिलता है जैसे—

विषमय = जलयुक्त

जीवन = पानी

ऐसे अर्थ केवल कोष के सहारे ही उपयोगी हो सकते हैं। लक्षणा और व्यंजना का तो केशव के काव्य में प्राचुर्य है जैसा हम अन्यत्र भी कह चुके हैं। इस प्रकार केशव की काव्यशैली असाधारण तत्त्वों पर खड़ी की गई है इसीसे वह प्रसाद-युक्त युक्त तुलसी की काव्यशैली की तरह जनता की वस्तु नहीं बन सकी है, न बन ही सकेगी।

६

केशव के काव्य-सिद्धांत

केशव के काव्य-सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए हमारे पास उनके दो ग्रंथ हैं—कविप्रिया और रसिकप्रिया। इन ग्रंथों ने हिन्दी साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है, और केशव के काव्य को समझने के लिए, वे भूमिका का काम दे सकते हैं; अतः उनका अध्ययन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। इस अध्याय में हम उन्हीं को अपने अध्ययन का विषय बनायेंगे।

केशव की रस-सम्बन्धी मान्यताओं के लिए रसिकप्रिया (रचनाकाल संवत् १६४८) महत्वपूर्ण है।

केशव के अनुसार शृंगार रस सब रसों का नायक है (१-१६)। केशव शृङ्गार को अपेक्षाकृत विस्तृत अर्थों में लेते हैं—रतिभाव का चातुर्य्यपूर्ण प्रकटीकरण जिसके भीतर कामशास्त्र वर्णित चातुर्य्य भी सम्मिलित है (१-१७)। शृङ्गार की दो जातियाँ हैं १—संयोग २—वियोग। प्रत्येक दो प्रकार का है—प्रच्छन्न और प्रकाश प्रच्छन्न संयोग-वियोग वह है जिसे केवल प्रेमी-प्रेमिका और उनके समान ही उच्च कुल वाली सखी जाने (१-१६)। प्रकाश संयोग-वियोग वह है जिसे सब लोग जानें (१-२१)। इस प्रकार हम इस तालिका द्वारा शृङ्गार का विभाजन प्रगट कर सकते हैं—
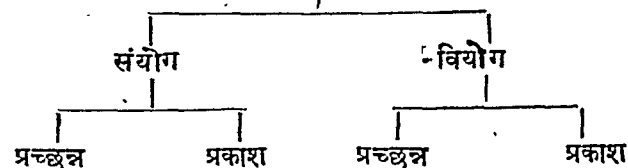
यहाँ केशव ने संयोग-वियोग को इस प्रकार विभाजित करके मौलिकता प्रगट करने की चेष्टा की है।

नायक

शृंगार के आलंबन नायक-नायिका हैं। इसके विभाग वे ही हैं जो परंपरा से चले आते हैं जैसे—अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट। परन्तु चूँकि केशव पहले शृंगार को प्रच्छन्न और प्रकाश दो भेदों में बाँट देते हैं इसलिए इनमें से प्रत्येक के भी दो भेद हो जाते हैं।

केशव ने नायक की परम्परागत विशेषताओं का साधारणीकरण कर दिया है। उनका नायक है—अभिमानी, अनासक्त(त्यागी), तरुण, कामशास्त्र प्रवीण, भव्य, क्षमी, सुन्दर, धनी, सभ्य (कुलीन रुचिवाला)। उसे रूप का अभिमान होगा। अनासक्त भाव से यह स्पष्ट है कि वह मधुकर-वृत्ति रखेगा। कामशास्त्र की प्रवीणता उसके लिए आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने एक नई श्रेणी के नायक की ही सृष्टि कर डाली है। नायक के इस रूप की प्रतिष्ठा हो जाने पर ही उस काव्य की रचना हो सकती है जो रीतिकाल का गौरव है। केशव का नायक जनसाधारण से कुछ ऊँची श्रेणी का है, परन्तु वह वात्सायन के नागरिक जैसा सम्पन्न भी नहीं है। धीरे-धीरे कवियों ने उसे जनलोक में ला खड़ा किया यहाँ तक कि ग्रामीण नायक-नायिकाओं को भी महत्वपूर्ण स्थान मिलने-

लगा और गँवारी-चित्रण चल पड़ा। नायक के लिए तरुण और कामशास्त्र-प्रवीण होना ही मात्र आवश्यक अंग रह गए।

अनुकूल नायक वह है जो परनारी के प्रतिकूल हो, अपनी स्त्री से ही प्रेम करे (२-३)। दक्षिण नायक की परिभाषा में सर्वमान्य परिभाषा से अंतर है, उसका चित्त चलायमान है, परन्तु वह पहली नायिका के भय के कारण ही दूसरी नायिकाओं से अधिक स्नेह नहीं चलाता (२-७)। केशव की मान्यता है कि वास्तव में नायक दूसरी नायिकाओं से भी सम्बन्धित है, परन्तु उसकी प्रीतिरीति पहली से इस प्रकार होती है कि वह अविश्वास नहीं करती (२-१०)। शठ नायक मन में कपट रखता हुआ भी मुँह से मीठी बातें करता है। दक्षिण नायक को उस नायिका से भी प्रीति है, इसे नहीं है, झूठे ही दिखाता है। उसे अपराध का भी डर नहीं है (२-११)। धृष्ट नायक को गाली और मार खाने में भी लाज नहीं रहती (१-१४)। केशव की दक्षिण नायक की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि वे यह मानते हैं कि एक पत्नीव्रत असंभव बात है। यह बात उस युग की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती है जब कुछ श्रेणियों में अनाचार इतना बढ़ गया था कि पति अपनी पत्नी से संतुष्ट न होकर वारांगनाओं और परकीयाओं के लिए आग्रहपूर्ण प्रयत्न करता था। साधारण जनता में यह कुप्रवृत्ति भले ही न हो, केशव जिस वातावरण में रह रहे थे, उसमें एकपत्नीव्रत नायक की रति-असमर्थता का ही उदाहरण मानी जाती होगी।

नायिका

नायिका का विभाग कई प्रकार से है। जाति की दृष्टि से यह पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी अथवा हस्तिनी है। इनके भेद कामशास्त्र के अनुसार ही है, कोई विशेष अन्तर नहीं

(३,१-१२)। वास्तव में यह जाति-भेद कविता का विषय नहीं है, न इस पर अच्छी कविता ही हो सकी है, परन्तु रीतिकाव्य में कदाचित् केशव द्वारा ही इसकी रूढ़ि पड़ गई और रसग्रन्थ में इन नायिकाओं के उदाहरण और लक्षण आवश्यक हो गये। संस्कृत रस-ग्रन्थों में इनका कोई महत्व नहीं है।

नायक के दृष्टिकोण से नायिका के ३ भेद हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। सामान्या (वारांगना) का काव्य में वर्णन वर्जित है, अतः केशवदास ने उसका लक्षण और उदाहरण नहीं लिखा। स्वकीया और परकीया तक ही दृष्टि सीमित रखी। स्वकीया निज पत्नी है, परन्तु केशवदास उसकी परिभाषा दूसरी प्रकार से करते हैं—"जो मन, वच, क्रम से आराधै। सम्पत्ति, विपत्ति और मरण में नायक में ही जिसकी रति रहे।" स्पष्ट ही यह "स्वकीया" का विस्तार है। यह आवश्यक नहीं है कि वह अपनी विवाहिता हो, प्रेमिका-मात्र ही रह सकती है। परकीया के लक्षण का भी विस्तार है—"सबतैं पर परसिद्ध जो ताकी प्रिया जु होय ६७।" यही नायक "सबतैं पर" है जो भ्रमरवत् आचरण करता है। वह विवाहिता होगी, तो "नूढ़ा", और अविवाहिता होगी तो "अनूढ़ा"।

पहले इस स्वकीया नायिका के भेदों को लेकर चलते हैं। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है—
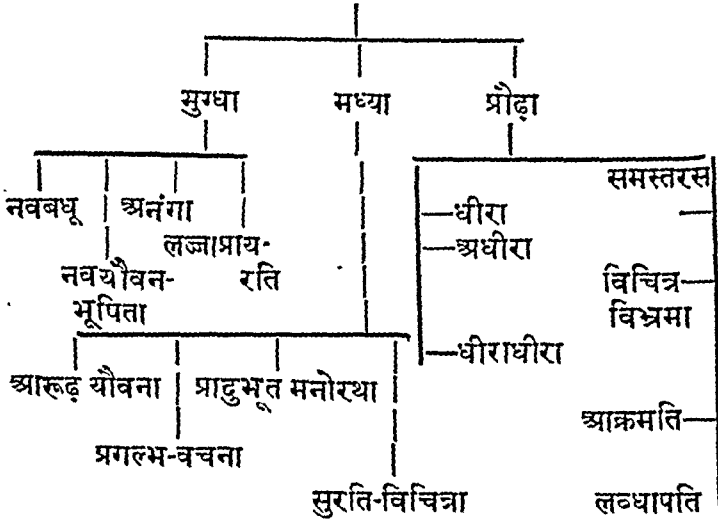
नववधू मुग्धा

जिसकी द्युति दिन-दिन दूनी बढ़े (३-१८) ।

नवयौवन-भूषिता

यौवन का प्रवेश हो और बालावस्था छूटती जाये। यहाँ नायिका वय:संधि की अवस्था में है (३-२०)।

अनंगा

इसे सद्य:यौवना समझना चाहिए । यौवन के सब चातुर्य जाने, परन्तु करे बालिका-विधि से (३-२२)।

लज्जाप्रायरति

जो लाजयुक्त सुरति के कारण पति से वैर बढ़ावै (३-२४)। स्पष्ट है कि उपरोक्त नववधू मुग्धा तो सामान्य नववधू ही है।

अन्य तीन भेद रति-भाव के क्रमिक विकास की दृष्टि से गढ़े गये हैं। मुग्धा नायक के पास नहीं सोती। सखी लेकर सोती है तो सुख नहीं मिलता (३-२६)। वह सपने में भी सुख मानकर रति नहीं करती।" नायक को छलबल का प्रयोग करना पड़ता है। उसका मान साधारण भय दिखाने से ही छूट जाता है (३-२८, ३०)।

आरूढ़ यौवना मध्या

पूर्ण यौवना है (३-३३)।

प्रगल्भ-वचना

बोलने में उलाहना दे, त्रास दिखाये, शंका न करे (३-३५)।

प्रादुर्भूत मनोभवा

जो काम कलाविद हो गई हो और स्वयं कामेच्छा से भरी रहे (३-३७)।

सुरति विचित्रा

जो इस प्रकार विचित्र रति करे जिसे वर्णन करना कठिन हो, परन्तु सुनने में आनन्द हो।

यहाँ पर कवि १४ रति, १६ शृङ्गार और सुरतांत का वर्णन करता है। १६ शृङ्गार है—१ मज्जन, २ अमलत्रास, ३ जानक, ४ केश सँवारना, ५ अंगराग, ६ भूषण, ७ मुखवास, ८ कज्जल ६ १०मीठा बोलना, ११ हँसना, १२, १३ सुन्दर चलना, देखना, १४ पतिव्रत पालना, १५ मुखराग, १६ लोचन-विहार। चौदह रतियों में से सात रति वास्तव में ७ वहिर्रति हैं—आलिंगन, चुम्बन, स्पर्श, मर्दन, नखदान, रददान, अधरदान। सात अंतररति हैं। वास्तव में ये सात आसन हैं—स्थिति, तिर्यक्, सम्मुख, विमुख,

अधः, ऊर्द्धः, उत्तान। सुरतांत सम्बन्धी एक पद देकर केशव ने काव्य में इसका प्रयोग भी समीचीन स्वीकार कर लिया है, यद्यपि उन्होंने सुरतारंभ और सुरति को स्थान नहीं दिया है।

मध्या के ३ भेद और हैं – धीरा, अधीरा, धीराधीरा । धीरा व्यंग लिए कोप करती है, अधीरा टेढ़ी बात कहे, परन्तु उसमें व्यंग न हों, धीराधोरा व्यंग-अव्यंग दोनों से काम लेकर उलाहना दे (३-४६)।

प्रौढ़ा के ४ भेद हैं (३-५१)।

समस्त रसकोविद

काम-रसकोविद है और रस की खान है। उससे सुख साधन को सिद्धि होती है (३-५२)।

विचित्र विभ्रमा

जिसको दीप्ति देखकर ही दूती उसे प्रिय से मिला दे (३-५४)।

अक्रामति

जो मन-वचन-क्रम से अपने प्रिय को वश में कर ले (३-५६)।

लब्धापति

पति और कुल के सब मनुष्यों से कानि करे (३-५६)। प्रौढ़ा के ३ भेद और हैं—धीरा, अधीरा, धीराधीरा (३-६०)। जो आदर के बीच अनादर करे और प्रगट में हित करे, वह धीरा है। जो प्रकृति को छिपाये रखे, नायक के हँसाने पर हँसे, नायक के बुलाने से बोले, स्वयम् न बोले आदि, वह आकृति गुप्ता धीरा है। पति के अपराध को गिन कर जो हित न करे वह अधीरा है और जो मुख से रूखी बात कहे, जिसके मन में प्रिय की भूख हो, वह धीराधीरा है।

परकीया के दो भेद हैं—ऊढ़ा, अनूढ़ा (विवाहिता और अविवाहिता)। उनके विलास गूढ़ और अगूढ़ हैं (३-६६)। अनूढ़ा गूढ़ बात किसी से नहीं कहती। ऊढ़ा अंतरंग सखी से गूढ़ बात कह देती है, वहिरंग सहेली से अगूढ़ कहती है (३-७२)।

दर्शन के ४ ढङ्ग हैं—साक्षात, चित्र, स्वप्न और श्रवण। इनमें से प्रत्येक में मनोदशा का क्या सूक्ष्म अंतर हो जाता है, इसे उदाहरण से प्रकट किया गया है।

दंपति की चेष्टा

सखी बीच में होती है, उसी के द्वारा प्रणय-निवेदन चलता है (५-१)। नायिका इस प्रकार व्यवहार करती है कि प्रीति प्रगट न हो (जाना जाय कि प्रिय से प्रेम नहीं है), जब प्रियतम अन्यत्र देखने लगे, तब उसे देखे। जब यह जाने कि नायक उसे देख रहा है तो सखी से चिपट जाय। झूठे ही हँस-हँस पड़ती हो। सखी से बात करती हुई किसी बहाने प्रियतम को अपने अंग दिखलाती है। कहीं चेष्टा प्रच्छन्न होती है, कहीं प्रकाश (५—५,६,७,८) प्रेम की बढ़ी हुई अवस्था में नायिका स्वयं दूतत्व को तैयार होती है। पत्री आदि के द्वारा स्वयं-दूतत्व करती है या उसका मानसिक संकल्प करती है। यह स्वयं-दूतत्व प्रकाश हो सकता है या प्रच्छन्न। अब नायिका प्रीति को बहुत तरह जता कर लाज तज कर प्रियतम से मिलती है (५-२०)। अनूढ़ा लाज से स्वयं तो नहीं बोलती, उसकी सखी उसकी दशा जनाती है (३-२३)।

प्रथम मिलन

प्रथम मिलन-स्थान के सम्बन्ध में केशव का मत है कि निम्न-लिखित स्थान हो सकते हैं—दासी का घर, धाई का घर, सहेली का घर, सूना घर। प्रथम मिलन किसी भी समय संभव है—

परन्तु रात, विशेषतः मेघाच्छन्न रात, इसके लिए विशेष उपयुक्त है। मानसिक दशा और परिस्थितियाँ भी अनेक हैं—भय, उत्सव, व्याधि का बहाना, न्यौते के मिस, वन विहार, जल-विहार।

भाव-विलास

प्रेम की जो बात मुख, आँख, वचन से निकलती है, उसे भाव कहते हैं (६-१)। भाव पाँच प्रकार के हैं— विभाव, अनुभाव, स्थायी, सात्विक, व्यभिचारी (६-२)। जिनसे अनेक रस अनायास ही प्रगट हों, वे विभाव हैं (३)। इसके दो भेद हैं—आलंबन, उद्दीपन। परिभाषा इस प्रकार है—

> जिन्हें अतन अवलंबई, ते आलंबन आन
> जिसके दीपति होत है ते उद्दीप बखान

केशवदास ने आलंबन की सूची इस प्रकार दी है—

> दंपति जोवन रूप जाति लच्छण युत सखिगन
> कोकिल कलित बसन्त फूलि फल दलि अलि उपवन
> जलयुत जलचर अमल कमल कमला कमलाकर
> चातृक मोर सुशब्द तड़ित घन अम्बुद अंबर
> शुभ सेज दीप सौगन्ध गृह पान खान परधानि मनि
> नव नृत्य भेद वीणादि सब आलंबन केशव बरनि

उद्दीपन हैं

> अविलोकन, आलाप चार, रंमन नख रददान
> चुबनादि उद्दीपिये मर्दन परस प्रवान

अनुभाव

अनुभाव आलंबन-उद्दीपन के अनुकरण हैं अर्थात् भाव-अनुभाव के बाद आते हैं (६—८)।

स्थायी भाव

रति, हास्य, शोक, क्रोध, उछोह, भय, निंदा, विस्मय (६-६)।

सात्विक भाव

स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण, अश्रु, प्रलाप।

व्यभिचारी भाव

ऐसे भाव हैं जो विना नियम ही प्रगट होते हैं—ये हैं निर्वेद ग्लानि, शंका, आलस्य, दैन्य, मोह, स्मृति, धृति, क्रीड़ा, चपलता, श्रम, मद, चिंता, क्रोध, गर्व, हर्ष, आवेग, निंदा, नींद, विवाद, जड़ता, उत्कंठा, स्वप्न, प्रबोध, विषाद, अपस्मार, मति, उग्रता, आशा, तर्क, अति व्याधि, उन्मा, मरण, भय।

हाव

शृङ्गार-चेष्टा को हाव कहते हैं (६-१५)। हाव हैं—हेला, लीला, ललित, मद, विभ्रम, विहित, विलास, किलकिंचित, विच्छित्ति, विब्बोक, मोट्टाइत, कुट्टमित, बोध।

१—हेला—लोकलाज छोड़ प्रियतम को देखे (१८)।

२—लीला—जहाँ प्रियतम प्रिया का रूप बना ले, प्रिया प्रियतम का रूप बना ले (२१)।

३—ललित—बोलना, हँसना, देखना, चलना, सब का यथार्थ (जैसा हो, ठीक वैसा ही) वर्णन ललित है (२४)।

४—मद—पूर्ण प्रेम के प्रताप से गर्व और तरुणपन जनित विकार से ही मद का रूप बनता है (२७)।

५—विभ्रम—दर्शन-सुख आदि में लगे रहने के कारण जहाँ वस्त्राभूषण उल्टे पहर लिये जायें, या अटपटा काम हो (६०)।

६—विहित—बोलने के उपयुक्त अवसर पर लाज के कारण न बोल सके (३३)।

७—विलास—खेलने, बोलने, हँसने, चितवन, चाल में जहाँ जल-थल आदि में विलास उपजे (३६)।

८—किलकिंचित—श्रम, अभिलाप, सगर्व स्मिति, क्रोध, हर्ष, भय एक ही साथ जहाँ उपजें (३६)।

६—विब्बोक—रूप और प्रेम के गर्व से जहाँ कपट अनादर होता हो (४२)।

१०—विच्छित—भूषण पहरने से जहाँ अनादर होता है (४५)

११—मोट्टाइत—जहाँ हेला-लीला से सात्विक भाव उत्पन्न हो और उसे बुद्धि से रोकने के प्रयत्न किये जायें, वहाँ मोट्टाइत भाव है (४८)।

१२—कुट्टमित—जहाँ केलि में कलह हो या कलह में केलि हो, कपट भाव रहे (५२)।

१३—वोध—जहाँ गूढ़ार्थ हों, बोध सरल न हो, ऐसे प्रकार से मन का भाव प्रगट करना (५५)। यह एक प्रकार का कूट समझिए।

नायिका-भेद

नायिका ८ प्रकार की होती हैं—(१) स्वाधीनपतिका, (२) उत्कला (उत्कंठिता), (३) वासकशय्या, (४) अभिसंधिता (कलहंतारिता), (५) खंडिता, (६) प्रोषित प्रेयसी, (७) लब्धा-विप्रा, (८) अभिसारिका।

१—स्वाधीनपतिका—पति नायिका के गुण में बँधा रहे।

२—उत्का (उत्कला, उत्कंठिता)—किसी कारण से प्रियतम घर नहीं आया, इस शोच से जो शोचित हो।

३—वासकसज्जा—प्रियतम के आने की आशा से जो द्वार की ओर देखती रहे।

४—अभिसंधिता—मान मनाते समय नायक मानिनी का अपमान करे और उसे छोड़कर चला जाय, जिससे उसे वियोग का दुख हो।

५—खंडिता—प्रियतम ने आने को कहा, प्रातः आये, रात को सौत के घर रहे थे, अब बहुत तरह बात बनाते हैं।

६—प्रोपितपतिका—जिसका प्रियतम अवधि देकर किसी कार्य निमित्त बाहर जाये।

७—विप्रलब्धा—नायक ने दूती को संकेत स्थान बताकर नायिका को लिवा लाने को कहा, भेजा। जब वह संकेत में आई तो आप नहीं मिला।

८—अभिसारिका—प्रेम की प्रबलता के कारण स्वयं जाकर मिलती है। इसके बाद स्वकीया, परकीया, सामान्या के अभिसार के भेद का वर्णन है जो महत्वहीन है। यह इस प्रकार है—

> अति लज्जा पग डग धरै चलत बधुन के संग
> स्वकिया को अभिसार यह भूषण भूपित अंग
> जनी सहेली शोभही बंधु बधू संग चार
> मग में देइ बराह डग, लज्जा को अभिसार
> चकित चित्त साहस सहित नील बसनयुत गात
> कुलटा संध्या अभिसरै उत्सव तम अधिरात
> चहूँ ओर चितवै हँसै, चित्त चोरै सविलास
> अंगराग रंजित नितहि भूषण भूपित भास

स्वकीया के ३ भेद हैं—उत्तम, मध्यम, अधम।

(१) उत्तमा—अपमान से मान करती है और नायक के मान करते ही मान छोड़ देती है।

(२) मध्यमा—लघु दोष से ही मान करने लगती है, बहुत प्रयत्न से ही छोड़ती है।

(३) अधमा—जो बिना प्रयोजन और बारम्बार रूठे। इनके अतिरिक्त देशकाल-वय से भी नायिकाओं के अनेक भेद किये जा सकते हैं (४५)। अंत में, केशव अगम्या का भी वर्णन कर देते हैं। ये अगम्या हैं—सम्बन्धिनी, मित्र-पत्नी, ब्राह्मण-पत्नी, जो पालन-पोषण करे उसकी पत्नी, अधिक ऊँची जाति की नायिका, न्यून जाति की चांडालादि जाति की नायिका, विधवा और पूजिता।

विप्रलंभ

जहाँ नायक-नायिका में वियोग है, वे एक स्थान पर नहीं हो सकें उसे विप्रलंभ शृंगार कहेंगे (८-१)। यह चार प्रकार का है—१—पूर्वानुराग, २—करुण, ३—मान ४—प्रवास। पूर्वानुराग की केशव की परिभाषा अस्पष्ट और असम्पूर्ण है—

देखति ही द्युति दम्पतिहि उपज परत अनुराग
बिन देखे दुख देखिये, सो पूरब-अनुराग

(८-३)

मानपूर्ण प्रेम के प्रताप से अभिमान के कारण उत्पन्न होता है। इसके ३ भेद हैं—लघु, मध्यम, गुरु। लघु मान उस समय उपजता है जब नायिका नायक को अन्य स्त्री को देखता हुआ देख लेती है या सखी से सुनती है। नायिका प्रिय का कहा नहीं करती, उससे लाज नहीं मानती। मध्यम मान में नायिका नायक को किसी अन्य स्त्री से बात करता देखती है। प्रियतम मानता हो, परन्तु हार और अन्त में उसके हृदय में भी मान उत्पन्न हो जाय। मान में अन्य नारी के रमण के चिन्ह देखे या नायक को का नाम लेता हुए सुने। लोक-मर्यादा का उल्लङ्घन करके जहाँ नायिका प्रियतम को कुछ बात कहती है, वहाँ गुरुमान नायक में

उत्पन्न होता है (प्रकाश ६)। मान-मोचन के छः ढंग हैं—साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा, प्रसंग-विध्वंस, दंड।

(१) साम—किसी ढंग से मन मोह के मान छुड़ा दे।

(२) दाम—छल से, कुछ देकर, वचन-चातुरी से मोह कर। जहाँ लोभ से मानिनी मान छोड़ दे, उसे गणिका मानवती कहेंगे।

(३) भेद—सखी को सुख देकर अपना लेवे। तब मान छुड़ाए।

(४) प्रणति—अति प्रेम से काम-वशीभूत होकर अपना अपराध जानकर प्रियतम नायिका के पाँव पड़े। परन्तु यदि नायक ने अपराध नहीं किया हो और काम-वशीभूत भी नहीं हो, तो इस प्रकार की प्रणति से रसहानि होगी।

(५) उपेक्षा—जहाँ मान की बात छोड़ कर कुछ और प्रसंग चला दिया जाय, जिससे मान छूट जाय।

(६) प्रसंग-विध्वंस—भय से नायिका के चित्त में भ्रम पड़ जाय और मान की बात भूल जाय।

केशव ने दंड को छोड़ दिया है। वह अवांच्छनीय है। वे सहज उपाय बताते हैं—

देशकाल सुधि वचन तें कलरवनि कोयल गान
शोभा शुभ सौगंध ते, सुख ही छूटत मान
(प्रकाश, १०)

करुण—केशव की करुण-रस की परिभाषा स्पष्ट नहीं है।

प्रवास—प्रियतम किसी कार्य से परदेश चला जाय।

विरह की दस दशाएँ कही गई हैं—१ अभिलाषा, २—चिंता, ३—गुणकथन, ४—स्मृति, ५—उद्वेग, ६—प्रलाप, ७—उन्माद, ८—व्याधि, ९—जड़ता, १०—मरण।

(१) अभिलाषा—शरीर से मिलन की इच्छा

(२) चिंता—कैसे मिले, कैसे नायक वश में हो।

(३) गुणकथन—"जहँ गुणगण मणि देहि द्युतिवर्णन वचन विशेष"

(४) स्मृति—और कुछ अच्छा न लगे, सब काम भूल जाये, मन मिलने की कामना करे।

(५) उद्वेग—जहाँ सुखदायक अनायास दुःखदायक हो जाये।

(६) प्रलाप—मन भ्रमता रहे, तन-मन में परिताप हो, परन्तु वचन प्रियपक्ष में कहे। केशव का यह लक्षण विचित्र है। वैसे शास्त्रकार अनर्गल वचन को या अनर्थक कथन को प्रलाप कहते हैं।

(७) उन्माद—कभी रोये, कभी हँसे, कभी इकटक देखे, कभी झटके से उठकर चल दे।

(८) जड़ता—जहाँ सुध-बुध भूल जाय, सुख-दुख समान माने

(९) व्याधि—अंग-अंग विवर्ण हो जाय, ऊँची साँस ले, नेत्रों से नीर बहे, परलाप हो।

(१०) मरण—छलबल से भी नायक की प्राप्ति न हो, तो पूर्ण प्रेम-प्रताप से मरण को प्राप्त हो। मरण का केवल उल्लेखमात्र ही हो सकता है—"केवल निमित्त मात्र"। इसीलिए केशव ने उदाहरण नहीं दिया—

मरण सुकेशवदास पै बरन्यों जाइ निमित्त
अजर अमर तासों कहै कैसे प्रेम चरित्र

सखी

सखियाँ ये होंगी—धाय, दासी, नायन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, सुनारी, बरहनी, शिल्पिनी, चुरिहारनी, रामजनी, संन्यासिनी, परवा की स्त्री, नायक और नायिका इन्हें ही सखी बनाते हैं (प्रकाश, १२) सखियों के काम ये हैं—शिक्षा, विनय, मनाना,

मिलन के लिए शृङ्गार करना, उलाहना देना (प्रकाश, १३)

अन्य रस

हास्यरस—जहाँ नैत्रों में या वचन में कुछ विचित्रता लाकर मोह उत्पन्न किया गया हो। हास्यरस के भेद हैं—मंदहास, कलहास, अतिहास, परिहास।

(१) मंदहास—नेत्र, कपोल, दंश और ओष्ठ थोड़े खुलें।

(२) कलहास—जहाँ कोमल निर्मल मनमोहक विलास हों और कुछ कलध्वनि भी निकले।

(३) अतिहास—जहाँ निःशंक हँसे, आधा वचन कहकर फिर हँस पड़े।

(४) परिहास— यह नायक-नायिका में नहीं, परिजनों में होगा जो उनकी मर्यादा छोड़ कर हँस पड़ेंगी।

करुणा—प्रिय के कष्टों को देखकर (विप्रिय कारणते) करुणरस की सृष्टि होती है।

रौद्र—क्रोध होने से चित्त उग्रता को प्राप्त होता है।

वीर—उत्साह से उत्पन्न होता है।

भयानक—जिसके देखने-सुनने से भय उपजे।

वीभत्स—जिसके देखने, सुनने से तन-मन उदास हो, ऐसा निंदामय कथन आदि।

अद्‌भुत—जिसे देख-सुनकर अचंभा हो।

समरस—सबसे मन उदास होकर एक ठौर रहे (सबसे निर्वेद, नायक या नायिका में अनुरक्ति, १४)

अनरस—विरोधी रसों के एक साथ आने पर "अनरस" हो जाता है। इसके पाँच भेद हैं—प्रत्यनीक, नीरस, विरस, दुःसंधान, पात्रादुष्ट (१) प्रत्यनीक—जहाँ शृंगार-वीभत्स-भयानक-रौद्र-करुण मिले (विरोधी रस), (२) नीरस—जहाँ "कपट" हो, मुँह से मिले, मन में कपट रखे, (३) विरस—जहाँ शोक में

भोग अथवा भोग में शोक का वर्णन हो. (४) दुःसाधन—जहाँ एक अनुकूल हो, दूसरा प्रतिकूल, (५) पात्रादुष्ट—जहाँ बिना विचार जैसा सूझा रख दिया गया हो। जहाँ जैसा न होना चाहिये; वैसा पुष्ट करे। केशव का मत है कि निम्न रसों में वैर है—वीभत्स-भय, शृंगार-हास, अद्भुत-वीर, करुण-रौद्र।

वृत्तियाँ

वृत्तियाँ ४ हैं—कौशिकी, भारती, आरभटी, सात्विकी। जहाँ करुण, हास्य, शृंगार हो और सरल भाव हों वहाँ कौशिकी है। 'जहाँ वीर, अद्भुत, हास का वर्णन हो और शुभ अर्थ हो, वहाँ भारती वृत्ति है। जहाँ रौद्र, भयानक, वीभत्स हो, पद-पद पर यमक हो, वहाँ आरभटी है। जहाँ अद्भुत, वीर, शृंगार, समरस-समान हो, वहाँ सात्त्विकी है।'

अलंकार

केशव के अलंकार सम्बन्धी सिद्धान्तों को समझने के लिए हमारे पास उनका ग्रंथ कविप्रिया है जिसमें इस विषय पर विस्तार-पूर्वक लिखा गया है। कविप्रिया पाँचवें प्रकाश के १ले छंद में ही केशव लिखते हैं—

जदपि सुजाति सुलच्छणी सुबरन सरस सुवृत्त
भूषण बिनु न विराजई कविता वनिता मित्त

अर्थात् "यद्यपि कविता ध्वनिमय हो, सुस्पष्ट लक्षणा-युक्त हो, रसानुकूल सुन्दर वर्ण भी उसमें हों; रस की पूरी सामग्री भी उसमें हो, तथा सुन्दर छन्द में कही गई हो, पर बिना अलंकार के शोभित नहीं होती।"

स्पष्ट है कि केशव अलंकार को ही प्रथम स्थान देते हैं,

इस प्रकार ध्वनि, व्यंग, गुण और रस को भी आवश्यक अंग समझते हैं। वे अलंकारवाद हैं।

परन्तु केवल अलंकारवादी कहने से काम नहीं चलेगा। केशव ने 'अलंकार' के अर्थों का विस्तार किया है। उन्होंने अलंकार के दो बड़े भेद किये हैं—साधारण या सामान्य और विशेष। पहली श्रेणी केशव की मौलिक कल्पना है। साधारण परिभाषा में हम जिन्हें अलंकार मानते हैं, वे दूसरी श्रेणी में आते हैं परन्तु केशव ने साधारण अलंकार को कम महत्त्व नहीं दिया है। तीन प्रभावों में उन्हीं का वर्णन है वे सामान्यालंकार के ४ भेद करते हैं-वर्ण अर्थात् रंगज्ञान, वर्ण्य अर्थात् आकारज्ञान, भूमिश्री अर्थात् प्रकृतिक वस्तुओं का ज्ञान और राज्यश्री अर्थात् राजा सम्बन्धी वस्तुओं का ज्ञान। अलंकार के अर्थों का विस्तार करते हुए केशव ने "कविशिक्षा" सम्बन्धी शास्त्र को भी उसके अन्तर्गत रख दिया है। वास्तव में 'अलंकार' से केशव काव्य-परिपाटी में चले आते हुए प्रयोग या कविकौशल का अर्थ ले रहे हैं। उन्होंने अलंकारों को भी "कविरूढ़ि" समझा है, जिनके रहस्य का जानना उतना ही आवश्यक है जितना कविसत्य और साधारण रूप से कविशास्त्र को। केशव के काव्य के अध्ययन के लिए ये प्रभाव महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए कि इनमें उन्होंने संस्कृत की पुरानी काव्य-परम्पराओं का पालन करते हुए हिंदी में काव्य परम्परा चलाने की चेष्टा की है और स्वयं अपनी मान्यताओं से प्रभावित हुए हैं।

'विशेषालंकार' के अन्तर्गत केशव ने ३७ अलंकार रखे हैं—१ स्वभावोक्ति, २ विभावना, ३ हेतु, ४ विरोध, ५ विशेष, ६ उत्प्रेक्षा, ७ आक्षेप, ८ क्रम, ९ गणना, १० आशिष, ११ प्रेमा, १२ श्लेष, १३ सूक्ष्म, १४ लेश १५ निदर्शना, १६ ऊर्जस्वी, १७ रस, १८ अर्थान्तर-न्यास, १९ व्यतिरेक, २० अपन्हुति, २१ उक्ति, २२ व्याजस्तुति, २३

व्याजनिन्दा, २४ अमित, २५ अर्थोक्ति, २६ मुक्त, २७ समाहित, २८ सुसिद्ध, २९ प्रसिद्ध, ३० विपरीत, ३१ रूपक, ३२ दीपक, ३३ प्रहेलिका, ३४ परवृत्त, ३५ उपमा, ३६ यमक, ३७ चित्र। केशव ने इन्हीं को 'विशिष्टालंकार' या 'विशेषालंकार' कहा है। मुख्य अलंकार यद्यपि ३७ माने गये हैं, परन्तु भेद-प्रभेद से वे अनेक हो जाते हैं, जैसे—

(१) विभावना के दो भेद (२)

(२) हेतु के तीन भेद—सभाव हेतु, अभाव हेतु और सभावाभाव हेतु (३)

(३) विरोध का एक भेद विरोधाभास है।

(४) आक्षेप के अनेक भेद हैं

> काल-भेद ३—भूत प्रतिशेध, भावी प्रतिशेध, वर्तमान प्रतिशेध। प्रकार-भेद ८—प्रेम, अधैर्य, धैर्य, संशय, मरण, आशिस, धर्म, उपाय, शिक्षा।

(५) श्लेष के ७ भेद हैं—अभिन्न पद, भिन्न पद, अभिन्न क्रिया-श्लेष, भिन्न क्रिया-श्लेष, विरुद्ध क्रिया-श्लेष, नियम-श्लेष, विरोधी श्लेष।

(६) अर्थान्तरन्यास के ३ भेद हैं—युक्त, अयुक्त, अयुक्त-युक्त, युक्त-अयुक्त।

(७) व्यतिरेक के २ भेद हैं—युक्ति, सहज।

(८) उक्ति के ५ भेद हैं—वक्र, अन्य, व्यधिकरण, विशेष, सहोक्ति।

(९) रूपक के ३ भेद हैं—अद्भुत, विरुद्ध, रूपक-रूपक।

(१०) दीपक के २ भेद हैं—मणि, माला।

(११) उपमा के २२ भेद हैं संशय, हेतु, अभूत, अद्भुत, विक्रिय, दूषण, भूषण, मोह, नियम, गुणाधिक, अतिशय, उत्प्रेक्षित,

श्लेष, धर्म, विपरी, विर्पाय, लाक्षणिक, असंभावित, विरोध, माला, परस्पर, संकीर्ण।

(१२) यमक के कई भेद हैं—आदि पद, द्वितीय पद, इत्यादि, अस्यमित, सस्यमेत इत्यादि, सुखकर (सरल), दुखकर (कठिन) इत्यादि।

(१३) चित्र के भी कई भेद हैं।

केशव के इस अलंकार-विवेचन पर उनके पांडित्य और उनकी अभिरुचि का प्रभाव है। उनकी कविता के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी प्रवृत्ति काठिन्य, चमत्कार और पांडित्य-प्रदर्शन की ओर थी। इसीलिए उन्हें यमक और श्लेष पसंद हैं। पद-पद पर पाठक से इनकी भेंट होती है। उन्हें उपमा भी प्रिय है। अतः उन्होंने श्लेष-यमक और उपमा के कई-कई भेद किये और पांडित्य-चमत्कार की ओर अभिरुचि होने के कारण एक पूरा प्रभाव चित्रालंकार पर लिख डाला। यह चित्रालंकार 'चित्र-काव्य' ही है।

दूसरी बात जो स्पष्ट होती है वह है उनकी अवैज्ञानिकता और उनका अलंकार-प्रेम। प्राकृत कवि की दृष्टि रस पर होती है, अलंकार पर नहीं, केशव अलंकारवादी हैं। उन्होंने 'रस' को भी अलंकार मान लिया है और उसे "रसवत्" नाम दिया है। रस-वर्णन की शैली नहीं है, न उसमें अभिव्यंजना का चमत्कार है। बुद्धि को नहीं छूता, हृदय को छूता है। अतः वह किसी भी तरह अलंकार नहीं होगा।

> रसमय होय सुजानिये रसवत केशवदास
> नवरस को संक्षेप ही समुझौ करत प्रकास
>
> (११वाँ प्रभाव)

यह लिखकर उन्होंने प्रत्येक रस का एक रसवत् अलंकार गढ़

डाला है। वास्तव में रस-निरूपण अलंकार के अंदर नहीं आता। कुछ लोग, जहाँ कोई रस अन्य रस का अङ्गीवत होकर आवे, उसका पोषण करे या उसकी शोभा बढ़ाये, वहाँ रसवत् अलंकार मानते हैं, परन्तु केशव इनसे भी कई क़दम आगे हैं। रसवत् अलंकार के उदाहरण रस के उदाहरण मात्र हैं। इस 'रसवत्' अलंकार की उद्‌भावना से केशव एकदम अलंकारवादियों की श्रेणी में आ जाते हैं।

तीसरी बात यह है कि केशव के कितने ही अलंकार वास्तव में "अलंकार" परिभाषा के अन्दर नहीं आते।

(१) स्वभावोक्ति कोई अलंकार नहीं है।

(२) केशव ने 'क्रम' अलंकार की परिभाषा स्पष्ट नहीं है। वह शृङ्खला या एकावली है।

(३) 'गणना' कोई अलंकार नहीं है—उससे काव्य-तथ्यों या मान्यताओं का ही निरूपण होता है।

(४) 'आशिष' व्यर्थ की ठूँस है।

(५) इसी तरह 'प्रेमालंकार'।

(६) 'प्रहेलिका' अलंकार केशव की सूझ है, यह 'चित्रालंकार के अन्दर आ सकता था। 'सूक्ष्मालंकार' और 'लेशालंकार' भी नवीन उद्‌भावनाएँ हैं। इनमें 'प्रेमकूट' कहे गए हैं।

(७) 'ऊर्ज्व' अलंकार भी वास्तव में कोई अलंकार नहीं है।

कविप्रिया अलंकार-ग्रन्थ है। परन्तु केशव ने अलंकार शब्द को विस्तृत अर्थ में लिया है। उन्होंने अलंकार के भेद यों किए हैं—
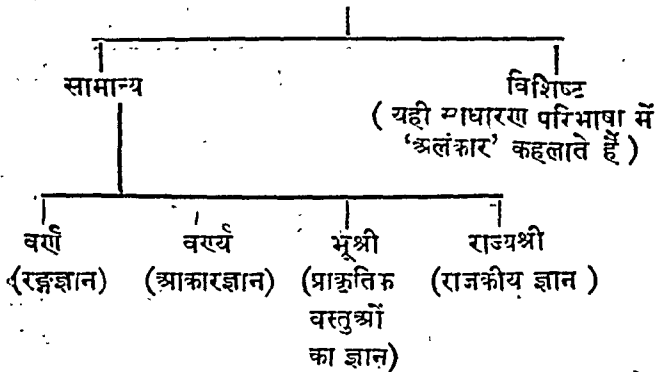
सामान्य अलङ्कार में कवि शिक्षा की अनेक बातें आ गई हैं, परन्तु उनमें भाषा-शैली अथवा काव्य गुणों का कोई सम्बन्ध नहीं। उनके द्वारा काव्य-रूढ़ि आदि का ही ज्ञान प्राप्त होता है। वर्णालङ्कार में यह बतलाया गया है कि विशिष्ट-विशिष्ट रङ्ग भिन्न-भिन्न वस्तुओं के विशेषण अथवा प्रतीक हैं, जैसे श्वेत यश का रङ्ग है। भूश्री अलङ्कार में बताया है कि महाकाव्यांतर्गत वर्णित प्राकृतिक वस्तुओं के वर्णन में क्या-क्या बाते हैं—देश, नगर, वन, नदी, आश्रम, सरिता, ताल, सूर्योदय, सागर, षट्ऋतु। राज्यश्री अलङ्कार के अन्तर्गत राज एवं राजा सम्बन्धी अनेक बातों का ज्ञान अपेक्षित है—(१) राजा, राजपत्नी, राजकुमार, पुरोहित, दलपति, दूत, मंत्री (२) हय, गज, (३) मंत्र, पयान, संग्राम, आखेट, जलकेलि, (४) स्वयंवर, विरह, मान, करुण विरह, प्रवास विरह, पूर्वानुराग, सुरति। इस प्रसङ्ग से सामयिक राज-जीवन पर प्रभाव पड़ता है। मध्ययुग के अधिकांश कवि राजाओं के आश्रित थे, अतः राज्यश्री उनका प्रिय विषय है। ऊपर स्पष्ट है कि "राज्यश्री" में प्रमुखता विलास एवं प्रेम को मिली है

जिनमें शृङ्गार के सभी अङ्ग हैं—संयोग और वियोग के सभी अंग हैं। राजाओं का अधिकांश जीवन इन्हीं प्रेमचक्रों में बीतता था, जो समय बचता उसके लिए जल-केलि, आखेट आदि आमोद-प्रमोद थे। थोड़ी बहुत संग्राम की परम्परा भी थी। हय-गज-युद्ध प्रमुखता प्राप्त किये थे। इनका वर्णन चल पड़ा था। वास्तव में अधिकांश काव्य "यशगीत" मात्र था। 'राज्यश्री' अलङ्कार के अंगों को स्पष्ट करते हुए केशवदास ने अधिकांश उदाहरण राजा राम के बहाने लिखे हैं। यही बाद को "रामचन्द्रिका" में स्थान पा गये।

इस अलङ्कार-विवेचन के अतिरिक्त काव्योपयोगी अन्य ज्ञान का भी समावेश है, जैसे काव्य-दोष, कवि की परिभाषा एवं विशेषता और कवि-भेद एवं कवि-रूढ़ियाँ। केशव के अनुसार कवि तीन प्रकार के हैं (१) उत्तम (हरिरसलीन), (२) मध्यम (जो मानव-चरित वर्णन करते हैं—'प्राकृत जन-गुनगान' तुलसी), (३) अधम (जो लोगों को प्रसन्न करने के लिए परनिंदात्मक कविता या भडौएँ आदि लिखते हैं) कवि या तो सच बात को झूठ बनाकर बोलते हैं या झूठ बात को सत्य बना कर कहते हैं या कुछ बातों का नियमबद्ध वर्णन करते हैं। अन्तिम काम आचार्य कवियों का है। यह कवि-नियम या कविरूढ़ि की स्वीकृति है जिसका वर्णन सामान्यालंकार के अन्तर्गत किया गया है। जैसे स्त्रियों के अनेक शृङ्गार होने पर भी केवल १६ शृङ्गार ही कहे जाते हैं। ज्ञान को उज्ज्वल मानना, क्रोध को लाल।

दोष

केशव ने अनेक नवीन दोषों की भी सृष्टि की है, और उदाहरण भी दिये हैं। उन्होंने निम्नलिखित काव्य-दोष हैं—अन्ध, वधिर, पंगु, नग्न, मृतक, अगण, हीनरस, तिभङ्ग, व्यर्थ, अयथार्थ, हीनक्रम, कर्णकटु, पुनरुक्ति, देवविरोध,

कालविरोध, लोक-विरोध, न्याय-विरोध, आगम (शास्त्र-विरोध), रसदोष। इनमें से रसदोषां का विस्तृत विवेचन रसिकप्रिया १६वें प्रकाश में हुआ है।

केशव के इन आचार्यत्व-प्रधान ग्रन्थों की अभी विस्तृत विवेचना नहीं हुई है, परन्तु फिर भी विद्वानों ने जो कुछ कहा है उसमें बहुत सार है—"आचार्य में जिन गुणों का होना आवश्यक था, वे सब केशव में वर्तमान थे। वे संस्कृत के भारी पंडित थे, साहित्यशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे, विद्वान थे, प्रतिभा-सम्पन्न थे और इन्द्रजीतसिंह के मुसाहिब, मन्त्री और राजगुरु होने के कारण ऐसे स्थान पर थे, जहाँ से वे लोगों में अपने लिए आदर-बुद्धि उत्पन्न कर सकते और अपने प्रभाव को बहुत गुरु बना सकते। केशव को छः पुस्तकों में से रामालंकृत-मञ्जरी, कविप्रिया और रसिकप्रिया साहित्यशास्त्र से सम्बन्ध रखती हैं। रामालंकृत-मञ्जरी पिंगल पर लिखी गई है, कविप्रिया अलंकार-ग्रंथ है और रसिकप्रिया में रस, नायिकाभेद, वृत्ति आदि पर विचार किया गया है। रामालंकृत-मञ्जरी अभी छपी नहीं है। कहते हैं, उसकी एक हस्तलिखित प्रति ओरछा दरबार के पुस्तकालय में है।" "केशव ने कवि-शिक्षा का विषय कोटकाँगड़ा के राजा माणिक्यचंद्र के आश्रय में रहनेवाले केशव मिश्र के अलंकारशेखर नामक ग्रन्थ के वर्णकरत्न (अध्याय) से लिया। अलंकारशेखर कविप्रिया के कोई ३० वर्ष पहले लिखा गया होगा। इसके वर्णकरत्न में केशव मिश्र ने उन विषयों का वर्णन किया है जिन पर कविता की जानी चाहिये, यथा भिन्न-भिन्न रङ्ग, नदी, नगर, सूर्योदय, राजाओं की चर्या आदि। केशवदास ने इन विषयों को वर्णालंकार और वर्ण्यालंकार उन दो भागों में बाँटा है। वर्णालंकार के अंतर्गत भिन्न-भिन्न रंग लिये गए हैं और शेष वर्णनीय विषय वर्ण्यालंकार में है। अलंकार शब्द का यह

विलक्षण प्रयोग है। शास्त्रीय शब्द अलंकार के लिए केशवदास ने विशेपालंकार शब्द का व्यवहार किया है। इस प्रकार केशव ने अलंकार का अर्थ विस्तृत कर दिया जिसके वर्णालंकार, वर्ण्यालंकार और विशेपालंकार तीन भेद हो गये। विशेपालंकारों अर्थात काव्यालंकारों के विषय में केशवदास ने विशेपकर दंडी का अनुसरण किया है। अध्याय के अध्याय काव्यप्रकाश से लिये गए हैं। कहीं-कहीं राजानक सम्यक से भी सामग्री ली है। विषय प्रतिपादन के साधारण ढंग को सामयिक परंपरा से प्राप्त करने पर भी प्रधान अंगों पर बहुत पुराने आचार्यों का आश्रय लेने का फल यह हुआ कि रस की मिठास का मूल अलंकारों की झनझनाहट के सामने कुछ न रह गया। साहित्यशास्त्र के साम्राज्य में रस को पदच्युत होकर अलंकार की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और रसवत् अलंकार के रूप में उसका छत्रवाहक होना पड़ा। पुराने रीतिवादी आचार्य इतनी दूर तक नहीं गये थे। वे रसवत् अलंकार नहीं मानते थे, जहाँ एक रस दूसरे रस का पोपक होकर आवे किंतु केशव की व्यवस्था के अनुसार जहाँ कहीं रसमय वर्णन हो वही रसवत् अलंकार हो जाता है। सूक्ष्म भेद-विधान की ओर केशव ने बहुत रुचि दिखलाई है। उन्होंने उपमा के २२ और श्लेष के १३ भेद बताए हैं। केवल संख्या-वृद्धि के उद्देश्य से भी कुछ अलंकार ऐसे रखे गये हैं जिन्हें शास्त्रीय अर्थ में अलंकार नहीं कह सकते, जैसे प्रेमालंकार और अर्थालंकार। जहाँ प्रेम का वर्णन हो, वहाँ प्रेमालंकार और जहाँ और सहायकों के कम हो जाने पर भी अलंकार बना रहे वहाँ ऊर्ज्वलंकार। प्रेम के वर्णन से काव्य की शोभा बढ़ सकती है पर वह अलङ्कार नहीं हो सकता। × × × रसिकप्रिया में रस, नायिकाभेद, वृत्ति आदि विषयों का परम्पराबद्ध वर्णन किया गया है। भेदोपभेद-विधान की तत्परता उसमें भी अधिक दिखलाई गई है। नायिकाओं

का (पद्मिनी, चित्रिणी आदि) जाति निर्णय भी काव्यशास्त्र के अन्तर्गत तो लिया गया है, यद्यपि उसका काव्यशास्त्र से सम्बन्ध है।" (डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—आचार्य कवि केशवदास, लेख)

रसिकप्रिया के आधार रसमञ्जरी, नाट्य-शास्त्र और काम-सूत्र ग्रन्थ हैं। इस ग्रंथ में भी केशव ने मौलिकता का आग्रह प्रगट किया है

(१) उन्होंने सर्वप्रथम शृंगार से रसराजत्व को स्थापित किया है।

(२) उन्होंने शृङ्गार के दो भेद किए—प्रच्छन्न और प्रकाश। ऐसा करने के कारण उन्हें सारे नायिकाभेद के दो रूप गढ़ना पड़े—प्रच्छन्न और प्रकाश। हो सकता है, केशव ने इसे कोई विशेष महत्त्व की चीज समझा हो, परन्तु वास्तव में "प्रच्छन्न संयोग" वियोग-काव्य की वस्तु नहीं हो सकता है, उसमें रस का पूरा-पूरा परिपाक ही दिखलाया जा सकता है।

(३) उन्होंने नायिकाभेद का विशेष विस्तार किया जो अवांछनीय था, जिसकी कोई भित्ति ही न थी, और उसमें काम-शास्त्र की पद्मिनी, चित्रिणी आदि नायिकाओं के जाति-भेद और तत्सम्बन्धी अनेक बातें जोड़ दीं। विपरीत आदि अनेक गर्हित और गोप्य कामशास्त्र सम्बन्धी प्रकरणों का काव्य में प्रयोग तो सूरदास प्रभृति महानुभावों ने किया, परन्तु केशव ने उसे शास्त्रीय बल देकर स्पष्टरूप से काव्य का विषय स्वीकार किया। ऐसा करने से उन्होंने उस अश्लील काव्य के स्रोत का प्रवाह खोल दिया जिसके कारण रीतिकाव्य लांछित है।

(४) उन्होंने शृङ्गार के रसराजत्व की स्थापना के बहाने प्रेम जैसे दैवी भाव को कलुषित कर दिया। प्रेम में रौद्र और बीभत्स

रस दिखलाने की पहली चेष्टा केशवदास की है परन्तु बाद में भी उनके अनुकरण में ऐसे पद बने, जो रस के विरूपावस्था के उदाहरण हैं और कवियों की मानसिक विकृति को ही प्रकट करते हैं। फिर "शृङ्गार के उपादानों का—विभाव, अनुभाव, सञ्चारियों का सूक्ष्म, तार्किक तथा शास्त्रीय विवेचन नहीं हुआ है। रस का काव्य से क्या सम्बन्ध है, रस की निष्पत्ति विभावादिकों से कैसे होती है, भावों और रसों का क्या सम्बन्ध है, रसाभास तथा भावाभास क्या है, इत्यादि विषयों को केशवदास ने छोड़ ही दिया है।" (केशव की काव्यकला—पं० कृष्णशङ्कर शुक्ल)

इससे स्पष्ट है कि शृङ्गार रस के विवेचन में ही केशव ने पूर्ण रूप से पूर्ववर्ती शास्त्रों का सहारा नहीं लिया। परन्तु वे स्वयं भी आलोचना-विवेचना का कोई स्तुत्य उदाहरण पीछे न छोड़ सके। उनकी मौलिकता की भित्ति कमजोर है। केशव ने रस को 'रसवत्' अलङ्कार माना है, इससे धारणा होती है कि कदाचित् 'रस' से उन्हें अधिक सहानुभूति नहीं थी। बात भी ऐसी ही थी। वे चमत्कारवादी या अलङ्कारवादी कवि हैं। उनके ग्रन्थों का विस्तृत एवम् विचित्र अलङ्कार-बाहुल्य इस बात का प्रमाण है। परन्तु यदि हम यह आशा करें कि उन्होंने हिन्दी अलङ्कारशास्त्र का किसी विशेष पद्धति पर विकास किया, तो हमारी भूल होगी। साधारण अलङ्कार-ग्रन्थों में अलङ्कार तीन श्रेणियों में रखे जाते थे—शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, मिश्रालङ्कार, परन्तु केशव ने इनकी भी वैज्ञानिक विवेचना समाप्त न कर दी, वरन् उन्होंने सभी अलङ्कारों को एक में मिला कर रख दिया और कितने ही मिश्रालङ्कारों को साधारण अलङ्कारों का भेद-उपभेद बना दिया। उन्होंने 'अलङ्कार' शब्द की भी कोई परिभाषा नहीं दी है, और कुछ लोगों की राय है कि उन्होंने अलंकार अर्थ का विशेष विस्तार किया।" यह

स्पष्ट है कि अलंकार शब्द का अर्थ इस तरह लिया है जिससे अनेक ऐसे विषय भी उसमें आ गये हैं जिन्हें पूर्ववर्ती आचार्यों ने अलंकार नहीं कहा। उन्होंने अलंकार के दो भेद किए हैं सामान्य और विशिष्ट। शास्त्रीय परिभाषा में जो अलंकार कहे जाते हैं, वे विशिष्टालकार कहे गए हैं। सामान्यालंकार में वे विषय आये हैं जो वास्तव में कविता के वर्ण्य विषय हैं और जिन्हें कविशिक्षा के अन्तर्गत रखा गया था, अलंकार के अन्दर नहीं। इस प्रकार की मौलिकता का क्या अर्थ है? फिर सामान्यालंकार की सारी सामग्री उन्होंने संस्कृत के पूर्ववर्ती ग्रन्थों से ही ले ली है। अलंकारशेखर ग्रन्थ का तो इतना ऋण है कि अनेक लक्षण और उदाहरण उसके अनुवाद मात्र हैं, जैसे

हिमवत्येव भूर्जत्वक् चंदनं मलये परम्
मानवा मौलिता वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः

वर्नत चंदन मलयही, हिमगिरिही भुजपात
वर्नत देवन चरन तें, सिरतें मानुष गात

शैले महौषधीधातु वेशकिन्नर निर्झराः
शृङ्गपादगुहारत्न वनजीवाद्यु परयकाः

तुगं स्रुग दीरघ दरी, सिद्ध सुन्दरी धातु
सुरनरयुत गिरि वर्निए, औषध निर्झर पातु

इस पर चौथे प्रभाव से लेकर आठवें प्रभाव तक की सामग्री के लिए केशव दो संकृत ग्रंथों के पूर्णतयः ऋणी हैं—केशव मिश्र की 'अलंकारमंजरी' और अमर की 'काव्यकल्पलतावृत्ति'। इन ग्रंथों की सारी सामग्री को एक विशेष अलंकार भाग बनाकर केशव ने कौन-सी मौलिकता का परिचय दिया और उनके किस पांडित्य का पता चला।

विशिष्टालंकारों में भी केशव संस्कृत के ऋणी हैं—अधिकांश

सामग्री दंडी के 'काव्यदर्पण' से ली गई है और उसे कुछ परिवर्तन एव परिवर्द्धन के साथ उपस्थित कर दिया गया है। उदाहरण भी अनेक स्थानों पर अनुवाद मात्र हैं अथवा कहीं-कहीं दंडी के भावों का विकासमात्र उपस्थित किया है, जैसे—

अनञ्जिताऽसिल दृष्टिभ्रूरनावर्जिता मता
आश्रितोऽरुणश्चायमधास्तव सुन्दरि

भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करेहु होहिं
आँजी ऐसी आँखै केशोराम हेरि हारे हैं
काहे को सिंगार के बिगारति है अंग आली
तेरे अंग बिना ही सिङ्गार के सिंगारे हैं

दंडी और केशव दोनों के अलकार-भेदों की तुलना में यह स्पष्ट हो जायगा कि दंडी के कितके भेद ठीक न समझ कर अन्य नामों से उपभेद या दूसरे भेद बना दिये गये हैं। हम केवल एक अलंकार उपमा को ही लेकर यह बात स्पष्ट करेंगे। केशव ने उपमा के २२ भेद किए हैं, दंडी ने २०। इनमें से १५ भेद तो नाम, लक्षण, उदाहरण में एक ही हैं—संशयोपमा, अद्भुतोपमा, श्लेषोपमा, निर्णयोपमा, विरोधोपमा, हेतूपमा, विक्रियोपमा, मोहोपमा, अतिशयोपमा, धर्मोपमा, मालोपमा, अभूतोपमा, नियमोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, असंभावितोपमा। केशव के पाँच भेदों में केवल नामकरण का भेद है—परस्परोपमा (दंडी, अनन्योपमा) दूषणोपमा (निन्दोपमा), भूषणोपमा (प्रशंसोपमा), गुणाधिकोपमा (प्रतिषेधोपमा), लाक्षणिकोपमा (चटूपमा)। रह गये दो नए भेद जो दंडी में नहीं हैं—संकीर्णोपमा और विपरितोपमा। इनका विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके मूल में साम्य-भावना है ही नहीं जो उपमा के लिए आवश्यक है, अतः ये उपमा के भेद नहीं हो सकते।

दंडी का ही सहारा लेकर केशव ने 'यमक' के भी अनेक भेद कर डाले हैं, यद्यपि यहाँ वे दंडी के पीछे रह गये हैं।

यह आश्चर्य का विषय है कि केशव ने अनुप्रास को भी यमक का ही एक भेद बना डाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव में मौलिकता का आग्रह तो है, परन्तु उसे स्थापित करने के लिए न उनके पास अध्ययन है न प्रतिभा। क्या रसशास्त्र, क्या अलंकार-शास्त्र, क्या कविता के वर्ण्य विषय, गुण-दोष, सभी के लिए केशव ने संस्कृत आचार्यों की नाड़ी को टटोला है और उसे न समझ कर भी "नीम हकीम" बनने की चेष्टा की है। वे संस्कृत आचार्यों के कन्धों पर बैठ कर आचार्यत्व की ऊँची गद्दी तक उठना चाहते हैं, परन्तु जो संस्कृत के रीतिशास्त्र से परिचित हैं, वे उनके इस प्रयत्न को हास्यास्पद ही समझेंगे। जो हो, यह स्पष्ट है कि केशव का आचार्यत्व एक बहुत बड़ा भ्रम है जिसने हिन्दी साहित्यकारों

को तीन शताब्दियों तक भुलाये रखा है। उनकी भाषा, उनकी कविता-शैली, उनकी गम्भीरता, उनका राजगुरुत्व, समकालीन और परवर्ती राजदरबारी कवियों पर उनका प्रभाव—ये बातें ऐसी हैं जिन्होंने जाने-अनजाने केशव को गुरुत्व दे दिया। यह हर्ष का विषय है कि इस गुरुत्व को स्वीकार करके ही हिन्दी रीति-ग्रन्थकारों ने उनका पीछा छोड़ दिया और अन्य संस्कृत आचार्यों को लेकर स्वतन्त्र रूप से रीतिपथ प्रदर्शित किया। फिर भी आचार्यत्व नहीं, तो केशव की कविता का ही एक शक्तिशाली प्रभाव पिछले तीन सौ वर्षों के शृंगार काव्य पर पड़ा है और आज भी एक सीमित वर्ग उसे रूढ़ि बना कर चल रहा है।

७

केशव का वीर-काव्य

१६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक वीर काव्य की कोई निश्चित रचना उपलब्ध नहीं है, यदि हम विद्यापति की 'कीर्तिलता' को छोड़ दें जो पंद्रहवीं शताब्दी की रचना है। १५वीं शताब्दी के उत्तराद्ध में वीरकाव्य मिलने लगता है। केहरी कवि (वर्तमान १५८३ ई०) की कुछ रचना उपलब्ध है। इसके बाद तुलसी की रचनाएँ (मानस और कवितावली के सुन्दर और लंकाकांड) आती हैं। फिर केशव के तीन ग्रन्थ रतनबावनो, वीरसिंहदेव चरित और जहाँगीर जसचन्द्रिका (सं० १६५० के लगभग)। १६वीं शताब्दी और उसके बाद में दरबारों में चारणों, भाटों और प्रशस्ति-लेखकों के उपस्थित होने की परम्परा चल पड़ी। तब से हमें वीरकाव्य कई रूपों में मिलता है :

(१) प्रशस्ति काव्य जैसे छत्रसाल दर्शक, शिवाबावनी, मंत्र के पद, इत्यादि

(२) खण्ड-काव्य जैसे गोराबादल की कथा (जटमल, सं० १६००)

(३) रासौग्रन्थ जैसे राणा रासा (दयालदास सं० १६७१-१६७६), गुणराय रासौ और रामारासौ माधवदास, सं० १६७५ के आगे पीछे।

(४) चारणों की 'वात' और 'ख्यात'

(५) हिन्दी राष्ट्रीयता एवं जातीयता के प्रेमियों के काव्य

जैसे भूषण के शिवा सम्बन्धी छन्द, पृथ्वीराज और दुरसा के उद्बोधन और वीरगीत। औरंजेब के शासन के अत्याचार ने हिन्दुओं को जगा दिया और दक्षिण में शिवाजी, राजपूताने में छत्रसाल और रामसिंह, हिन्दी प्रदेश में नागा और पंजाब में सिखों ने उसका दृढ़ प्रतिरोध किया। फलस्वरूप इन सभी नेताओं के आश्रितों एवं प्रशंसकों में वीरकाव्य बना।

केशव की कविता ओरछा नरेश रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में रहकर लिखी गई। जिन रतनसिंह और वीरसिंह देव को केशव ने अपना विषय बनाया थे, इन्द्रजीतसिंह के भाई थे, और वीरत्व करके सद्गति को प्राप्त हुए थे। इसी प्रकार 'जहाँगीर जसचंद्रिका' भी ओरछा दरबार से उनके सम्बन्ध के अनुरोध से लिखी गई। केशव ओरछानरेश की ओर से जहाँगीर के दरबार में भेजे गये थे, कि वह जुर्माना माफ हो जाय, जो मुगल सम्राट् ने उन पर कर दिया था। वे इस काम में सफल हुए। कदाचित् जहाँगीर को प्रसन्न करने के लिए ही उन्होंने जहाँगीर जसचन्द्रिका लिखी और दरबार में पेश की। इसकी कोई प्रति प्रकाशित नहीं हुई है, यद्यपि जिन लोगों ने इसे देखा है, वे बताते हैं कि यह साधारण रचना है। वास्तव में यह पुस्तक प्रशस्ति ग्रंथों की श्रेणी में ही आती है जिनमें आश्रयदाता के गुण-दोषों पर ध्यान न कर उनकी प्रशंसा को ही अपना ध्येय बनाया जाता था। अन्य दोनों ग्रंथों के नायक सचमुच वीर पुरुष थे। रतनसिंह ने १६ वर्ष की छोटी आयु में अमानुषिक वीरता दिखलाई थी। इन ग्रंथों में केशव की दृष्टि प्रशंसा पर इतनी नहीं, जितनी ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन और रसपरिपाक पर है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त रामचन्द्रिका के लंकाकांड में भी हमें वीरकाव्य के दर्शन होते हैं।

रामचन्द्रिका में छन्दों के अति शीघ्र बराबर बदलते रहने के

कारण-रस प्रवाह की धारा संकुचित हो गई है। उनकी शृंगार-प्रियता और चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से भी इस ग्रन्थ के वीर-भाव को प्रसार में हानि हुई है। परन्तु इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण कहीं-कहीं सुन्दर चित्र वन पड़े हैं—

भगीं देखिकै शंकि लंकेशवाला
दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला
तहाँ दौरगो बालि को पूत फूल्यो
सबै चित्र को पुत्रिका देखि भूल्यो
गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको
भगी कै निहारी सबै चित्रसारी
लहै सुन्दरी क्यों 'दरी को विहारी
तजै दृष्टि को चित्र की सृष्टि धन्या
हँसी एक ताको तहीं देवकन्या
तहीं हास ही देवकन्या दिखाई
गही शंकि कै ले कराई बताई
सुरानी गहे केश लंकेश रानी
तमश्री मनो सूर शोभा निसानी
गहे बांह ऐंचे चहूँ ओर ताको
मनो हंस लीन्हें मृणाली लता को
छुटी कंठमाला लुटैं हार टूटे
खसैं फूल फूले लसैं केश छूटे
फटी कंचुकी किंकणी चारु छूटी
पुरी की सी मनों रुद्र लूटी
सुनी लङ्करानीन की दीन बानी
तहीं छांडि दीन्हो महा मौन मानी
उठ्यो सों गदा लै यदा लंकवासी
गये भागि कै सर्व शाखा विलासी

परन्तु अन्य दोनों ग्रन्थों में केशव ने वीरकवित्व का भी सुन्दर परिचय दिया है। 'वीरसिंह देव चरित' में वीरसिंह देव महाराज ओरछा का चरित्र है। इसमें अनेक प्रसंगों के साथ अबुलफजल की मृत्यु का भी वर्णन है जिससे वीरसिंह देव लांछित हुए थे। परन्तु केशव का यह काव्य वीरसिंह के इस कृत्य के कारणों पर भी प्रकाश डालता है और उनकी निर्दोषता सिद्ध करता है। सच तो यह है कि केशव की इस रचना से सामयिक इतिहास की कुछ बड़ी भ्रांतियाँ नष्ट हो सकती हैं और कितनी ही ऐतिहासिक घटनाओं के मूल में छिपे कारणों का उद्‌घाटन हो सकता है। वीरसिंहदेव की रचना-पद्धति में भी केशव की मौलिकता सम्मिलित है। उन्होंने उसकी रचना दान, लोभ और विंध्यवासिनी के संवाद के रूप में की है। इस प्रकार ग्रंथ में नाटकीयता आ गई है। केशव के दूसरे वीरकाव्य 'रतनबावनी में' कूट छंदों में मधुकर शाह के एक पुत्र रतनसेन की प्रशंसा की गई है जो अल्पायु में अकबर की विशाल वाहिनी से लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। इस ग्रन्थ में केशव चारणों की छप्पय छन्द में प्रयोग की हुई अनुस्वार और व्यंजनों के द्वित्व से पूर्ण शैली से प्रभावित हुए हैं। वीरसिंह देव के चरित्र में उन्होंने इस शैली की ओर आग्रह नहीं दिखाया है, अतः उसमें प्रसादगुण अधिक है। परन्तु मौलिकता वहाँ भी है। वह इस रूप में, कि इसमें रतनसिंह की वीरनिष्ठा को प्रकाशित करने के लिए उन्होंने विप्ररूप में भगवान की अवतारणा की है, जो रतनसिंह को जीवन का मूल्य समझाते हैं, परन्तु रतन मान और प्रतिष्ठा की मृत्यु को जीवन से श्रेष्ठतर सिद्ध करता हुआ मृत्यु की बलि-वेदी पर चढ़ जाता है। दोनों ग्रंथों की शैली नीचे उद्धृत की जाती है—

रतनसेन कह बात, सूर सामन्त सुनिज्जय
करहु पैज पन धारि मारि रणमंतन लिज्जिय

भाषा में इन ग्रन्थों की रचना हुई है, वह व्रजभाषा ही है। केशव के बाद तो कृत्रिम डिंगल का प्रयोग बहुत अधिक चल गया है। नीचे का अवतरण देखिये—

को अट्ठल्ल हरवल्ल को मुकरवल्ल भटित्तह
कि गजठल्ल मजिल्ल भूप छात्तल छयल्लह
हुज्जन कोम हुहिल्ल कहा कोतिल्ल रंगिल्लह
कितु किल्ल बनि मिल्ल बेन किंपित्ति मुल्लल्लह
गाहुल्लमल्ल सकल्ल से रए मल्ल जे सल्ल जिन
रावत्त मल्लसिंघ रहे न को आसुर सुरित

ऊपर का अवतरण 'राजविलास' (मान) से लिया गया है। यहाँ झुलना, हरावल, ढलना, मभला, भला, अकेला आदि के रूप बदल मिलते हैं झुल्ल, हरवल्ल, ठल्ल, मभिल्ल, मल्ल, सकल्ल इत्यादि। यह प्रवृत्ति ध्वन्यात्मक प्रयोग के साथ मिलकर काव्य को अत्यन्त कठिन और रसपरिपाक को कुण्ठित बना देती है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी हास्यास्पद भी हो जाती है, जैसे—

श्रीधर दल ब प्रबल लखि लोकपाल रह लज्जि
मदमह सोजह रिज् चढ़त कटक वर सज्जि
गज्जद्दल रनकज्ज जनघ समज्जजयवर
वंगगगहसि मंत गगननि, उतंग गिरिवर
रंगग्गगति मुकुरंगागाखन तुरंगग्गति सुर
पच्छुदभरथिर कच्छुकरव मुलच्छ समर दुर

(श्रीधर जंगनामा)

स नँ नँ नँ नँ नँ नँ छुट्टियं पर जुट्टिय नहि हुट्टियं
फ नँ नँ नँ नँ नँ नँ तब फुट्टियं सुर हुट्टियं ध्रुव लुट्टियं
ख नँ नँ नँ नँ नँ घुट्टियं लगि बानसौं असि भुट्टियं
ध नँ नँ नँ नँ नँ धुट्टियं भट भुट्टियं भर धुट्टियं

(सूदन : सुजानचरित)

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रजभाषा में लिखा वीरकाव्य अधिकांश डिंगल परम्परा का पालन है। उसमें राष्ट्रीयता और जातीयता की कोई भावना नहीं (भूषण के काव्य को छोड़कर)। उसका अधिकांश भाषा-प्रशस्ति मात्र है। और कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक पराजय को जय बना देता है। जहाँ इतिहास है भी, वहाँ कल्पना का इतना मिश्रण हो गया है कि इतिहास आँख की ओट हो जाता है। भाषा, भाव, विषय-निरूपण सभी में अनुकरण है। अधिकांश काव्य वर्णनात्मक है और उसमें परम्परागत छन्दों, उपमाओं आदि का प्रयोग है। युद्ध-वर्णन, सेनासज्ज-वर्णन, युद्ध के बाद का रणस्थल और स्वयं युद्ध सब में रूढ़ि का आश्रय लिया गया है।

परन्तु केशव के काव्य में, विशेषकर वीरसिंहदेव चरित में, वह सब दुर्गुण नहीं हैं जो परवर्ती ब्रजभाषा वीरकाव्य की विशेषताएँ हैं। उन्होंने इतिहास में कल्पना का मेल नहीं किया है और उनके वर्णनों में मौलिकता है। 'रामचन्द्रिका' के वर्णनों में कवि की जिस सिद्धहस्त लेखनी के दर्शन हमें होते हैं, वही हमें यहाँ भी मिलती है। यह शोक का विषय है कि वीरकाव्य लेखकों की दृष्टि 'वीरसिंहदेव चरित' पर नहीं गई और केशव का शृंगारिक कवि और आचार्य का रूप ही प्रमुखता पाता रहा।

— —

परिशिष्ट

रीति-काव्य

केशवदास उस कविता के अग्रगण्य कवि हैं जो हिन्दी साहित्य के 'रीतिकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा कि विद्वानों ने कहा है, यह नाम उस काव्य के लिए पूर्णतः उपयुक्त नहीं है जो केशव के समय से बनना शुरू हुआ और जिसकी धारा अविच्छिन्न रूप से आधुनिक काल (१८५०) तक चलती रही। परन्तु उपयुक्त न होने पर भी नाम चल पड़ा है, और इसलिए उसका प्रयोग करना आवश्यक होता है। कुछ अन्य नामों की ओर भी सुझाव हुआ है जैसे कलाप्रधान काव्य, शृगार मूलक काव्य, परन्तु कला, शृंगार रीति-ग्रन्थों का अनुकरण रीतिकाल या उत्तर मध्ययुग के काव्य (१६००—१८५०) की कविता की केवल कुछ रूढियाँ थीं। अन्य रूढ़ियाँ और विशेषताएँ भी इतनी ही महत्वपूर्ण हैं।

रीति-काव्य की मूल भावना शृंगार है। पुरुष-स्त्री के प्रकृत प्रेम का वर्णन, उनके यौवन-विकास, केलिविलास, हास-परिहास, संयोग-वियोग इस काव्य के विषय हैं। हम देखते हैं शृंगार की भावना ने हिन्दी के प्रारम्भिक काल में ही हमारे साहित्य में प्रवेश कर लिया था। इस भावना को हम राजपूत चारणों की वीर-कथाओं के केन्द्र में उपस्थित पाते हैं। रासो के इतने सभी युद्धों का कारण स्त्री का सौन्दर्य है, आल्हा-ऊदल की लड़ाइयों में वीर-

रस पूर्वराग से ही परिचालित है, समाप्ति भी परिचय-ग्रन्थि में होती है। नरपति नाल्ह का वीसलदेव रासो तो नाममात्र को वीर-काव्य है। उसमें नग्न प्रेम के वर्णन और राजमती के वियोग-चित्रण के सिवा कवि का क्या उद्देश्य हो सकता है? उसी से वीर कथा-काव्य मानने की परिपाटी भर पड़ गई है जो इतिहासों में चली आ रही है। इसी प्रकार हम सिद्ध कवियों की साधनाओं के पीछे रतिभाव का विकृत रूप पाते हैं। इन्द्रियजन्य विकारों को साधना का मार्ग बनाया जा रहा है।

जयदेव के काव्य 'गीतगोविन्दम्' से पहली बार कृष्ण और शृङ्गार का पूर्ण संयोग होता है, साथ ही मधुर भाव-भक्ति का जन्म होता है। उन्होंने कहा—

> यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासु कुतूहलम्
> मधुर कोमल कांत पदावली श्रृणु तदा जयदेव सरस्वीम्।

यहाँ स्पष्ट ही कवि के तीन उद्देश्य हैं:—

१—हरिस्मरण

२—विलास-कला-कुतूहल

३—श्रुतिमधुर काव्य (मधुर कोमल कांत पदावली) जयदेव में अपने प्रबन्ध के सम्बन्ध में लिखा है, श्री वासुदेव रतिकेलि कथा समेतमेतं करोति जयदेव कविः प्रबन्धम्। जयदेव ने अपने प्रबन्ध-काव्य के मङ्गलाचरण श्लोक को ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के राधा-कृष्ण के प्रथम दर्शन की कथा पर खड़ा किया है—

> मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमाल द्रुमैर्नक्त भीरुहयं त्वमेव तदियं राधे गृहं प्रापय। इत्थं नन्दनिदेश तश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्ज ᳚म राधा माधव योजयंति यमुनाकूले रहः केलयः॥

...ँ जयदेव ने इसको स्पष्ट कर दिया है कि ये *माधव* (कृष्ण) ...८ पुरुष ही है और दश अवतार इन्हीं के अवतार हैं (दशाकृति

कृत कृष्णाय तुभ्यं नमः) (केशवधृत दशविध रूपं जय जगदीश हरे) यह स्पष्ट है कि गीतगोविन्दम् की रचना तक कृष्ण परब्रह्म दशावतारी मूलपुरुष थे। भागवत में उनका गोपियों (जीवात्माओं) से केलिविलास रूपक रूप में वर्णित था। ब्रह्मवैवर्त पुराण में मूल प्रकृति राधा ने गोपियों का स्थान ले लिया। जयदेव ने इस अवतारी भाव के साथ कामकलाविद राधाकृष्ण का भाव भी गुम्फित कर दिया। उन्होंने राधा कृष्ण के मान, दूती, अभिसार और निकुञ्जकेलि एवं रास की विस्तृत चित्रपटी तैयार की। जयदेव की कविता का प्रभाव विद्यापति पर पड़ा। उनके कृष्ण-काव्य का आधार ही रसशास्त्र है। यदि विद्यापति के कृष्ण-काव्य से राधा-कृष्ण के नाम हटा लिये जायें तो कुछ थोड़े से पदों को छोड़ कर उनके सारे साहित्य से अध्यात्म का आवरण उतर जाता है। यही बात सूफ़ी कवियों के सम्बन्ध में पूर्णतयः चरितार्थ है। कृष्ण-काव्य के इतर कवियों की मनोवृत्ति के विषय में तो कोई सन्देह नहीं। मधुर भक्ति में लौकिक प्रेम को ही ईश्वरोन्मुख किया जा रहा है। नन्ददास और रसखान इसके उदाहरण हैं। आगे चलकर मुगल-कालीन विलासिता का प्रभाव भी कृष्ण-काव्य पर पड़ा और एकदम लोक-जीवन की भित्ति पर उतर आया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी के आदि काल से शृङ्गार-रस का निरूपण होता चला आ रहा है। परन्तु उस पर वारता और अध्यात्म का आवरण है। धारा प्रच्छन्न रूप से चल रही है। बाद को अपने युग की विलासिता और संस्कृत के उत्तर कालीन काव्यों और आचार्यों के प्रभाव के कारण जल ऊपर आ गया है और धारा साफ़ दिखलाई पड़ती है। १६वीं शताब्दी के ५० वर्ष बीतते-बीतते उसने केशवदास जैसे कवि को जन्म दे दिया है। अब उसके अस्तित्व में सन्देह ही नहीं रहा।

शृङ्गाररस (रीति) की रचनाओं का एक दूसरा पहलू भी है। इन रचनाओं का सूत्रपात अधिकतर संस्कृत रीति-आचार्यों के रस, अलङ्कार, या ध्वनि सम्बन्धी सूत्रों को पकड़कर हुआ है अथवा इस युग के कवियों की एक विशेष प्रेरणा यह भी रही है कि वे रीतिशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखें और उदाहरण में अपने ही पद (कवित्त-सवैये) रचें। इन कवियों में ऊँचा पांडित्य न था, ऊँचा अध्ययन भी न था, न मौलिक तर्कशक्ति ही थी। हाँ, कवि-प्रतिभा कम न थी। फल यह हुआ कि एक बड़ा साहित्य तैयार हो गया जिसके एक दोहे में लक्षण और कवित्त और सवैये में उसका उदाहरण रहता। उदाहरण सदैव ही लक्षण पर पूरा उतरे, यह बात भी नहीं। कभी-कभी वे लक्षण एक ही ठहरते हैं, कभी लक्षण ही अस्पष्ट और ग़लत हैं, परन्तु उदाहरण सदैव उच्चकोटि के होते हैं। वास्तव में आचार्यत्व का दम भरने वाले रीतिकालीन कवि उच्च प्रतिभा-सम्पन्न कवि-मात्र थे।

इन रचनाओं की परम्परा में हमें सबसे पहले कृपाराम मिलते हैं जिन्होंने १६वीं शती के पूर्वार्द्ध में "हिततरंगिणी" की रचना की, यद्यपि पं० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल जैसे विद्वानों का अनुमान है कि यह ग्रन्थ बिहारी सतसई के बाद की रचना है (देखिये कोपोत्सव स्मारक ग्रन्थ में उनका केशवदास पर लेख)। परन्तु असल में यह परम्परा १६वीं शताब्दी के आरम्भ में ही अथवा उसके भी कुछ पहले जाती है क्योंकि कृपाराम के अपने पूर्ववर्ती रीति-कवियों के नाम लिये हैं। इनके समसामयिक गोप कवि और मोहनलाल मिश्र के अप्राप्त ग्रन्थों रामभूषण और अलंकार-चन्द्रिका (गोप) और शृङ्गार-सागर (मोहनलाल मिश्र) का उल्लेख करना भी अनुचित ही होगा। इन अप्राप्य ग्रन्थों के बाद हमें केशवदास के बड़े भाई पं० बलभद्र मिश्र का "नख-शिख" सम्बन्धी ग्रन्थ मिलता है।

रीतिग्रन्थों का एक दूसरा स्रोत भी हमारे पास है—वह है

कृष्ण-भक्ति-काव्य की व्याख्या में लिखे ग्रंथ। सूरदास की साहित्य-लहरी में नायिका-भेद और अलंकारों का ही निरूपण है, यद्यपि उसमें न सब नायिका ही मिलेंगी, न सब अलंकार ही। उनके शिष्य और "अष्टछाप" के कवि नन्ददास ने 'रसमञ्जरी' सम्बन्धी नायिका-भेद का ग्रन्थ लिखा और उनके अन्य ग्रन्थों पर भी रस-विवेचन और शृङ्गार रस सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं की पूरी छाप है। उसी समय अकबर के दरबार में रहीम ने "बरवै नायिका-भेद" लिखा और तुलसी के ग्रन्थों पर भी उनके रस-शास्त्र के अध्ययन की पूरी छाप है। इन सब कवियों की दृष्टि 'रस' पर ही अधिक गई थी, वे सब उच्च रसकोटि के कवि थे।

परन्तु हिन्दी काव्य-संसार में जिस रीतिकवि की ओर हमारी दृष्टि सब से पहले जाती है, वे महान कवि केशवदास ही हैं। रीतिकाल के कवियों में वे अग्रगण्य हैं। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में रामकथा लिखी, परन्तु उसमें भक्तिभावना नहीं है, पांडित्य प्रकाशन ने उनकी अनेक कविताओं को ऊहापोहात्मक कर दिया है, इसमें वासना का भी गहरा पुट है। उनकी दो रचनाएँ वीर प्रशस्ति हैं—बीसलदेव चरित और रतनबावीन—परन्तु इससे वे वीर-काव्य के कवि नहीं हो जाते। हमें उनकी रचनाओं की मूल प्रवृत्ति देखना है। वास्तव में केशवदास ने अपने समय की सभी धाराओं को बल दिया है, परन्तु वे प्रतिनिधित्व रीतिकाव्य-धारा का ही कर सके हैं। उनकी रीति सम्बन्धी दो पुस्तकें हैं—रसिकप्रिया (शृङ्गार-रस सम्बन्धी) और कविप्रिया (कविज्ञान और अलंकार सम्बन्धी) यही पुस्तकें हमारे सामने उनके प्रकृत रूप को रखती हैं। केशव भक्तिकाल और रीतिकाल की सन्धि पर खड़े हैं, इसलिए हम उन्हें भक्ति-विषयक कथानक पर लिखते भी देखते हैं (१६०१, रामचन्द्रिका), परन्तु उनके पांडित्य और उनकी रीति-कालीन प्रवृत्ति ने भक्ति का गला घोंट दिया है। वे

मौलिकता के पीछे पड़ गये हैं। कथानक में मौलिकता है, छन्द पद-पद पर बदले हैं, अधिकांश छन्द अलंकारों के उदाहरण जान पड़ते हैं और इस सबमें प्रबन्धात्मकता ऐसे खा जाती है कि ग्रन्थ गोरखनाथी जंजाल रह जाता है। केशव की महत्ता यह है कि उन्होंने पहली बार हिन्दी साहित्य को संस्कृत साहित्य के सभी काव्यांगों का परिचय करा दिया। जैसा हम ऊपर बता चुके हैं रस और अलंकार ग्रन्थों का प्रकाशन १५४१ ई० (हिततरंगिणी, कृपाराम) से ही हो गया था, परन्तु ये प्रयत्न संस्कृत साहित्यशास्त्र से बहुत अधिक प्रभावित नहीं थे, न उस समय इस प्रकार की कोई परिपाटी खड़ी हुई जैसा बाद में हुआ। इनमें से किसी ने काव्यों का पूरा परिचय भी नहीं कराया था। अधिकांश कवि—आचार्य रसवादी थे। केशवदास ने भामह, उद्भट और दंडो जैसे प्राचीन आचार्यों का अनुसरण किया जो रस, रीति आदि को अलंकार मान लेते थे। उनकी प्रकृति को स्वयं चमत्कार प्रिय था और इसी से उन्होंने संस्कृत साहित्य की ऐसी पुस्तकों को अपनाया जो साहित्यशास्त्र के विकास की दृष्टि से बहुत पीछे पड़ गई थीं।

कदाचित् केशव की इसी अति प्राचीनवादिता के कारण ही उनके बाद रीतिग्रन्थ रचने की परिपाटी नहीं पड़ी—सब लोग उन प्राचीन ग्रन्थों से परिचित भी न थे। परिपाटी आधी शताब्दी बाद चली और उसने परवर्ती आचार्यों का आश्रय लिया। अलंकार ग्रन्थों का प्रणयन चन्द्रालोक और कुवलयानंद के अनुसरण में हुआ और काव्य के रूप के सम्बन्ध में रस को प्रधान मानने वाले ग्रन्थों "काव्यप्रकाश" और "साहित्य-दर्पण" को आधार बनाया गया। रीतिग्रन्थ-प्रणयन की यह अखण्ड परम्परा म्परा चिंतामणि त्रिपाठी से आरम्भ होती है जिन्होंने १६४३ ई० के लगभग काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश ग्रन्थ

प्रकाश ग्रन्थ लिखे और छन्दशास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। इस परम्परा के कवि एक दोहे में लक्षण लिखते हैं और कवित्त या सवैये में उनका उदाहरण देते हैं। इस प्रकार एक दोहे में लक्षण स्पष्ट नहीं हो सकता था, न उसमें विवेचन के लिए ही स्थान था। इसके लिए गद्य ही उपयुक्त होता, परन्तु गद्य विशेष प्रयोग में नहीं आ रहा था। दूसरी बात यह है कि आचार्यत्व का ढोंग भरनेवाले इन कवियों में न इतनी विद्वत्ता थी जितनी संस्कृत कवियों में, न सूक्ष्म पर्यालोचन शक्ति। उन्होंने संस्कृत रीतिशास्त्र को किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ाया। लक्षण-ग्रन्थ लिखना बहाना मात्र था, उद्देश्य कविता था। एक दोहे में अपर्याप्त उदाहरण लक्षण से मेल भी नहीं खाता था। कुछ अलंकारों के भेद न समझने के कारण भी गड़बड़ी थी और प्रायः संस्कृत और हिन्दी आचार्य-कवियों के भेद इस लिए भिन्न हो गये हैं। परन्तु विभिन्नता का कारण कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं था, अतः हिन्दी-साहित्य में अलंकारों आदि का अध्ययन विकास की दृष्टि से नहीं किया जा सकता।

रीति-काव्य के कवियों में एक दूसरा वर्ग ऐसे कवियों का था जो एकदम लक्षण-ग्रन्थों की रचना करने नहीं बैठे, परन्तु साहित्यशास्त्र उन्हें भी अलक्षित रूप से प्रभावित कर रहा था। ऐसे कवियों की रचनाएं तुलना की दृष्टि से पहले कवियों की रचनाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस वर्ग के हम दो भाग कर सकते हैं। पहले वर्ग के कवियों (बिहारी, मतिराम आदि) पर साहित्यशास्त्र, कला और संस्कृत साहित्य का प्रभाव था, दूसरे वर्ग के कवियों में (जो उत्तरार्द्ध में आते हैं, जैसे, बोधा, घनानन्द) अनुभूति की प्रधानता थी और मौलिकता की मात्रा अधिक थी।

रीतिकाव्य की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसपर संस्कृत रीतिशास्त्र का प्रभाव तो था ही, परन्तु

इससे भी अधिक संस्कृत काव्य-परम्परा का प्रभाव था। हमें उन्हीं कवि-प्रसिद्धियों और काव्य-गत रूढ़ उपमानों के दर्शन होते हैं जो संस्कृत के परवर्ती काव्य में ग्रहण हुए हैं। नायिका के अंगों के उपमानों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। जहाँ कहीं फ़ारसी का प्रभाव लक्षित है, वहाँ भी वह परवर्ती संस्कृत कवियों (गोवर्धनाचार्य आदि) के ढंग पर ग्रहण किया गया है। इस प्रकार इस काव्य की आत्मा संस्कृत साहित्य के परवर्ती काल से वल पाती है। वह मूलतः भारतीय है, यद्यपि वासनामूलक और ऐश्वर्यमूलक। एक प्रकार से उसमें भक्तिकाव्य के प्रति प्रतिक्रिया भी है जो रूढ़िवादी, रोमांटिक और पारलौकिक था। इसके विपरीत रीतिकाव्य नैतिक भावनाओं से हीन, क्लासिकल और गैहिक (लौकिक) था, परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि इस प्रकार की कविता से उस समय की जनता की मूल मनोवृत्ति पाई जाती है। जहाँ तक कलाप्रियता की बात है, वहाँ तक तो यह ठीक है, परन्तु "शृङ्गार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की अभिरुचि नहीं थी, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी, जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २६१) जिस प्रकार राजा-महाराजा और मध्य वर्ग के पंडित या कायस्थ-समाज का जीवन निश्चित परिपाटी में बंध गया था, उसी तरह यह काव्य भी परपाटी में बँधा हुआ था।

एक प्रकार से अधिकांश काव्य नागरिक था। उसके प्रकृति-वर्णन कल्पना-मूलक और शास्त्र एवं साहित्य-प्रेरित थे। उद्दीपन में जो प्रकृति ग्रहण की गई थी, उसका आधार शास्त्रीय ज्ञान था, स्वतन्त्र प्रकृति पर्यवेक्षण नहीं। इसके अतिरिक्त एक नई

पद्धति "बारहमासे" (बारह-महीनों में विरहिणी की दिनचर्या) लिखने की चल पड़ी जो "षटऋतु-वर्णन" का ही विकास था। हो सकता है, इसके पीछे हिन्दी लोकगीतों का भी प्रभाव हो। इसका मूल भी विप्रलंभ में था। बरवों और दोहों में कुछ कवि प्राकृत गाथाओं के लेखकों के साहित्य और उनके दृष्टिकोण को अपनाने के कारण गाँव की प्रकृति और ग्रामीण प्रेम और नायिकाओं का चित्रण हुआ जो इस सारे साहित्य में वही स्थान रखता है जो मरुभूमि में सर्वेष्ठित जलमयी वनस्थली।

कुछ उस समय की साहित्यिक एवं सामाजिक परिस्थिति पर भी विचार कर लेना चाहिये। केशव का समय संस्कृत साहित्य-शास्त्र के इतिहास का वह युग है जिसमें संकलन और विश्लेषण का काम जोरों पर था। प्राचीन रसमार्ग उद्भट आलंकारिकों और रीति-मार्गियों के प्रचंड आक्रमणों को सहकर भी मम्मट आदि नवीन रसमार्गियों के प्रयत्न से अपने उचित स्थान पर प्रतिष्ठित हो गया था। ध्वनि-मार्ग आगे चलकर उसकी प्रतिद्वन्द्विता में प्रतिष्ठित हुआ था परन्तु वह भी उसका पोषक बन बैठा। यद्यपि रस के वास्तविक स्वरूप के विषय में अप्पय दीक्षित और पंडितराज गंगाधर के वाद-विवाद के लिए अभी स्थान था पर फिर भी शास्त्रकारों ने यह निश्चित कर लिया था कि काव्य में सारभूत अंश या वस्तु रस है और अलंकार, रीति और ध्वनि अपनी शक्ति के अनुसार उसके सहायक हैं, विरोधी नहीं। फलतः साहित्यकार अब विरोधी मतों से बहुत कुछ विरोधी अंश निकालकर साहित्यशास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगों के सामञ्जस्य से एक पूर्ण पद्धति बना रहे थे। विश्वनाथ का साहित्यदर्पण और उसके समान ग्रन्थ इसी प्रयत्न के फल थे। केशव इन्हीं पिछले ढंग के आचार्यों में हैं। संस्कृत से चली आती हुई परम्परा को उन्होंने हिंदी में स्थान दिया। परन्तु उनके बाद

रीति-प्रवाह को विशेष विकसित करने का श्रेय चिन्तामणि, भूषण (शिवराजभूषण, १६६६-७३) और मतिराम (ललितललाम, १६६४, रसराज) को मिला।

मुसलमानों की धार्मिक भाषा तो अरबी थी, परन्तु दरबार की भाषा इस समय फ़ारसी थी। इस भाषा का बहुत बड़ा साहित्य मुसलमानों के भारतवर्ष के प्रवेश के पहले ही बन चुका था। बहुत से हिन्दुओं ने जो दरबार से सम्बन्धित थे, यह भाषा सीखी। इस काल में उत्तर भारत में उर्दू का विकास हुआ तो वह भी फ़ारसी के नमूने पर। फ़ारसी भाषा का कलापक्ष अब तक बहुत उन्नत हो चुका था। भावपक्ष के दृष्टिकोण से उसमें दो धाराएँ थीं :

१—सूफ़ी प्रेम-धारा
२—लौकिक प्रेमधारा (शृंगार-धारा)

सूफ़ी विचारावली का प्रभाव हिन्दी प्रांत की जनता और उसकी भाषा पर इस काल से पहले ही सूफ़ी संतों द्वारा (कवियों या काव्य-पुस्तकों द्वारा नहीं) पड़ चुका था। इससे हिन्दी-साहित्य में एक नवीन धारा चल पड़ी थी जिसे हमने सूफ़ी धारा या प्रेम-मार्गी धारा कहा है। यह इस काल में भी चल रही थी। अतएव दरबार के प्रभाव से फ़ारसी साहित्य के बाह्यरूप (कलापक्ष) की चमक हिन्दू कवियों की आँखों में चकाचौंध पैदा करने लगी। लौकिक प्रेमधारा या शृंगारधारा न भाव में, न कलापक्ष में ही भारतीय कवि के लिए नई चीज थी। इतिहास के गुप्तकाल के संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का साहित्य विकसित हो चुका था। कलापक्ष पर अलंकार, रस आदि विषयक संस्कृत ग्रन्थ सामने थे। फ़ारसी कवियों से होड़ लेने के लिए इनसे सहायता ली गई और कुछ इस कारण से, कुछ जनता के उच्च वर्गों की

विलासप्रियता ने रीतिकालीन अलंकृत धारा चल पड़ी। यह धारा संस्कृत और बाद में प्राकृत में बहुत काल (सम्भवतः तांत्रिक या राजपूत काल तक) तक चलती रही थी और इसकी अंतिम देन गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती और शृंगार रस के सुभाषित थे। नये कवियों ने आचार्यों के कलापक्ष-संबंधी नियम और काव्य-साहित्य दोनों को अपने सामने रखा। यह प्रभाव अकबर के समय में शुरू हुआ और उसके राजकाल (१५५६—१६०५) तक अच्छी तरह विकसित हो गया। जो कवि राज-दरबार से सम्बन्धित थे, उनपर यह प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। यहाँ से आरंभ होकर यह प्रभाव बाहर के कवियों में फैला। अकबर के दरबार के कवि थे तानसेन (१५६०—१६१०), राजा टोडरमल (१५८३—१५८६), बीरबल (१५२८—१५८३), गंग आदि। मुगल राजाश्रय हिन्दी के कवियों को औरंगजेब के समय (१७०७) तक मिलता रहा। धीरे-धीरे दो राजाश्रय विकसित हो गये थे—एक तो मुसलिम प्रांतीय शासकों के दरबार, दूसरे हिन्दू राजे जिन्होंने मुगल सम्राटों की नीति से प्रोत्साहित होकर कवियों को आश्रय देना शुरू किया था। दोनों की रुचि प्रायः एक-सी ही थी, इसलिए संस्कृति में भेद होते हुए भी दोनों राजाश्रयों के काव्य में दृष्टिकोण का कोई अंतर नहीं है। औरंगजेब के समय (१६५८—१७०७) में हिन्दी रीति-कविता की अवनति हुई। १७वीं शताब्दी के अंतिम दिनों में यह बात स्पष्ट होने लगती है और १८वीं शताब्दी के मध्य तक रीतिकाव्य थोड़ी मौलिकता भी खोकर चट्टान की तरह ठोस और दृढ़ हो जाता है। कवियों की संख्या पर्याप्त रहती है परन्तु किसी का व्यक्तित्व दूसरे के व्यक्तित्व से ऊँचा नहीं है। इने-गिने विषयों पर ही पिष्टपेषन किया गया है।

इस प्रकार रीतिकाव्य का जन्म और विकास हुआ। इस

रीति-प्रवाह को विशेष विकसित करने का श्रेय चिन्तामणि, भूषण (शिवराजभूषण, १६६६-७३) और मतिराम (ललितललाम, १६६४, रसराज) को मिला।

मुसलमानों की धार्मिक भाषा तो अरबी थी, परन्तु दरबार की भाषा इस समय फ़ारसी थी। इस भाषा का बहुत बड़ा साहित्य मुसलमानों के भारतवर्ष के प्रवेश के पहले ही बन चुका था। बहुत से हिन्दुओं ने जो दरबार से सम्बन्धित थे, यह भाषा सीखी। इस काल में उत्तर भारत में उर्दू का विकास हुआ तो वह भी फ़ारसी के नमूने पर। फ़ारसी भाषा का कलापक्ष अब तक बहुत उन्नत हो चुका था। भावपक्ष के दृष्टिकोण से उसमें दो धाराएँ थीं :

१—सूफ़ी प्रेम-धारा
२—लौकिक प्रेमधारा (शृंगार-धारा)

सूफ़ी विचारावली का प्रभाव हिन्दी प्रांत की जनता और उसकी भाषा पर इस काल से पहले ही सूफ़ी संतों द्वारा (कवियों या काव्य-पुस्तकों द्वारा नहीं) पड़ चुका था। इससे हिन्दी-साहित्य में एक नवीन धारा चल पड़ी थी जिसे हमने सूफ़ी धारा या प्रेम-मार्गी धारा कहा है। यह इस काल में भी चल रही थी। अतएव दरबार के प्रभाव से फ़ारसी साहित्य के वाह्यरूप (कलापक्ष) की चमक हिन्दू कवियों की आँखों में चकाचौंध पैदा करने लगी। लौकिक प्रेमधारा या शृंगारधारा न भाव में, न कलापक्ष में ही भारतीय कवि के लिए नई चीज थी। इतिहास के गुप्तकाल के संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का साहित्य विकसित हो चुका था। कलापक्ष पर अलंकार, रस आदि विषयक संस्कृत ग्रन्थ सामने थे। फ़ारसी कवियों से होड़ लेने के लिए इनसे सहायता ली गई और कुछ इस कारण से, कुछ जनता के उच्च वर्गों की

विलासप्रियता से रीतिकालीन अलंकृत धारा चल पड़ी। यह धारा संस्कृत और बाद में प्राकृत में बहुत काल (सम्भवतः तांत्रिक या राजपूत काल तक) तक चलती रही थी और इसकी अंतिम देन गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती और शृंगार रस के सुभाषित थे। नये कवियों ने आचार्यों के कलापक्ष-संबंधी नियम और काव्य-साहित्य दोनों को अपने सामने रखा। यह प्रभाव अकबर के समय से शुरू हुआ और उसके राजकाल (१५५६—१६०५) तक अच्छी तरह विकसित हो गया। जो कवि राज-दरबार से सम्बन्धित थे, उनपर यह प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। यहाँ से आरंभ होकर यह प्रभाव बाहर के कवियों में फैला। अकबर के दरबार के कवि थे तानसेन (१५६०—१६१०), राजा टोडरमल (१५८३—१५८९), बीरबल (१५२८—१५८३), गंग आदि। मुग़ल राजाश्रय हिन्दी के कवियों को औरंगजेब के समय (१७०७) तक मिलता रहा। धीरे-धीरे दो राजाश्रय विकसित हो गये थे—एक तो मुसलिम प्रांतीय शासकों के दरबार, दूसरे हिन्दू राजे जिन्होंने मुग़ल सम्राटों की नीति से प्रोत्साहित होकर कवियों को आश्रय देना शुरू किया था। दोनों की रुचि प्रायः एक-सी ही थी, इसलिए संस्कृति में भेद होते हुए भी दोनों राजाश्रयों के काव्य में दृष्टिकोण का कोई अंतर नहीं है। औरंगजेब के समय (१६५८—१७०७) में हिन्दी रीति-कविता की अवनति हुई। १७वीं शताब्दी के अंतिम दिनों में यह बात स्पष्ट होने लगती है और १८वीं शताब्दी के मध्य तक रीतिकाव्य थोड़ी मौलिकता भी खोकर चट्टान की तरह ठोस और दृढ़ हो जाता है। कवियों की संख्या पर्याप्त रहती है परन्तु किसी का व्यक्तित्व दूसरे के व्यक्तित्व से ऊँचा नहीं है। इने-गिने विषयों पर ही पिष्ठपेषन किया गया है।

इस प्रकार रीतिकाव्य का जन्म और विकास हुआ। इस

काव्य के संबन्ध में हमने जो अब तक कहा है, उसे संक्षेप में, सुस्पष्ट रूप से यों रख सकते हैं—

१—रीतिकाव्य में साहित्य-चर्चा के नाते रीति के तीन अंगों पर लिखा गया—रस, अलंकार, ध्वनि। रस की शास्त्रीय व्यवस्था सबसे प्राचीन है। यह भरतमुनि के काव्यशास्त्र में मिलती है। वास्तव में रस का प्रधान केन्द्र नायक-नायिका है। अलंकारशास्त्र का संबन्ध केवल भाषा से है, अतः उसका माध्यम काव्य है। भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र में केवल कुछ अलंकारों की चर्चा प्रसंग-वश कर दी गई है परन्तु उसका विशेष विवेचन बाद में हुआ। ध्वनि-सम्प्रदाय (प्र० आनन्दवर्द्धनाचार्य) ने दोनों को एकत्र किया। उसने कहा कि रस ध्वनित भी हो सकता है, अतः जहाँ केवल अलंकार है, वहीं रस की ध्वनि भी उत्पन्न की जा सकती है। इस व्याख्या के अनुसार फुटकल पदों में अलंकार के साथ रस का सृजन भी संभव समझा गया।

यह हम कह चुके हैं कि 'भावधारा के रूप में शृंगार रस प्रधान है, परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से अलंकारों को ही विशेष महत्त्व मिला है, रस को नहीं। वास्तव में रस, अलंकार और ध्वनि को एक स्थान पर एकत्रित करने की चेष्टा की गई है जो सब जगह समान रूप से सफल नहीं हुई है।

संस्कृत अलंकारशास्त्र में आचार्य व्याख्याता होता था, कवि नहीं। वह अपने मत के समर्थन में प्रसिद्ध रचनाओं से उदाहरण उपस्थित करता था। मुक्तकों से इस प्रकार के उदाहरण उपस्थित करना सहल था, इसलिए प्राकृत और संस्कृत के सैकड़ों मुक्तक पद और श्लोक उद्धृत किये गये। यहाँ हिन्दी में एक दूसरी ही रीति चली। कवित्व और आचार्यत्व का मेल करने का प्रयत्न हुआ। ग्रंथकर्ता उदाहरण भी स्वयम् गढ़ता था। रीतिकाव्य का एक बड़ा भाग लक्षणों को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है, परन्तु

सूक्ष्म अध्ययन करने से यह पता चलता है कि हिन्दी रीतिकाल के कवियों को रीति की शुद्धता की चिंता और अन्वेषण की प्रवृत्ति इतनी नहीं थी, जितनी किसी प्राचीन रीतिग्रंथ का सहारा लेकर स्वतंत्र रूप से लक्षण कहकर रचना करने की।

२—इसी रीति-विवेचन में एक चौथी धारा कामशास्त्र की मिल गई थी। ऐसा संस्कृत काव्य में ही हो चुका था। संस्कृत के कवि प्रेम-प्रसंग में कामशास्त्र के ज्ञान का पर्याप्त परिचय देते थे। हिन्दी में प्रेम के व्यावहारिक प्रसंगों में इससे सहायता ली गई।

३—नाट्यशास्त्र और रसशास्त्र से नायिका-भेद लिया गया और उसे कल्पना के बल पर बड़ी दूर तक विकसित किया गया।

४—परन्तु रीति-अंगों के अतिरिक्त संस्कृत काव्यरूढ़ियाँ, स्त्री-अंगों के लिए बँधे उपमान, कवि-प्रसिद्धियाँ, छंद सभी विषयों से रीति-काव्य पर संस्कृत-साहित्य का विशेष आभार है।

५—इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण का प्रेम-प्रसंग और वंशी आदि के प्रसंग कृष्ण-काव्य और तत्कालीन कृष्ण-भक्ति से आ गये। केशवदास ने कृष्ण को स्पष्ट रूप से शृङ्गाररस का देवता माना है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अधिकांश रीति-काव्य राधा-कृष्ण का आलंबन लेकर चलता है।

६—रीतिकाव्य में काव्य-कौशल (कला) का महत्त्व अधिक हो गया। रस, अलंकार और नायिकाभेद ही सब कुछ हो गये, भाव की मौलिकता कुछ नहीं रही। फुटकल पदों की इसीसे भरमार हो गई। सारा रीतिकाव्य मुक्तक रूप में उपस्थित है—ये मुक्तक दोहा, सवैया, कवित्त छंद में ही अधिक हैं। इनमें यमक, अनुप्रास जैसे कला-प्रधान अलंकारों पर भी व्यापक दृष्टि डाली गई है।

७—जिन कवियों ने लक्षणों के उदाहरण के रूप में अपनी कविता उपस्थित नहीं की, वे भी रीति-ग्रंथों से प्रभावित थे।

८—रीतिकाव्य ने संस्कृत की सारी रूढ़ियाँ नहीं अपनाईं परन्तु उसने स्वयं इस प्रकार की कुछ रूढ़ियाँ गढ़ लीं जिनसे कवि बराबर प्रभावित होते रहे। कवियों की इस अनुकरणवृत्ति का फल यह हुआ कि वह उत्तरकालीन संस्कृत आचार्यों की दुनिया में रहने लगे या उन्होंने अपनी अलग दुनिया बना ली। अलङ्कारों और नायिका-भेद के बाहर की दुनिया के उन्हें दर्शन नहीं हुए। उन्होंने अपने स्वतंत्र निरीक्षण और स्वतंत्र चिंतन की बलि कर दी। स्वतंत्र चिंतन की ही नहीं स्वतंत्र व्यक्तित्व की भी। फिर भी प्रत्येक कवित्त-सवैये के अंत में कवि अपनी छाप लगा ही देता है, जैसे उसका अपना व्यक्तित्व हो, उसका नाम भुलाया न जा सके।

९—परन्तु यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस २००-२५० वर्ष के कवियों के काव्य को क्या रस, अलंकार, नायिकाभेद के उदाहरण के रूप में ही समझा जाये ? यह भूल होगी। सारे रीतिकाल में रस और अलंकारों के वैज्ञानिक अथवा शास्त्रीय विवेचन की प्रवृत्ति कहीं भी नहीं दीखती। उन्होंने विवेचना के लिए भी दोहे-जैसे छोटे छंद का प्रयोग किया। अतः स्पष्ट है कि विवेचना उनका ध्येय नहीं था। जिस तरह पिछले भक्त-कवि राधाकृष्ण की लीला को कविता का बहाना समझते थे, उस तरह इस युग के कवि लक्षणों को बहाना-मात्र समझते थे। सच तो यह है कि उन्हें एक अच्छा सहारा हाथ लग गया था। इसी से वे अपने उदाहरणों में अधिक सतर्क भी नहीं जान पड़ते। इसी से कहीं-कहीं उन्हें जब यह जान पड़ता है कि उनका उदाहरण उस अलंकार में नहीं आता जिसके उदाहरण-स्वरूप वह उपस्थित किया गया है तो वे एक नया अलंकार-भेद गढ़ लेते हैं।

१०—उन कवियों ने लोकजीवन को अधिक निकट से देखा। विशेषकर जहाँ तक शृङ्गार का सम्बन्ध है। परन्तु उन्होंने

बहुधा उन्हें राधाकृष्ण की प्रेमलीला के रूप में ही हमारे सामने रखा। वास्तव में अलौकिक शृङ्गार की लौकिक प्रतिष्ठा भक्तों ने ही कर दी थी। कृष्ण, गोपियों—राधा की प्रेम-विरह और अभिसार कथाएँ लोकजीवन के प्रेम-विरह और अभिसार से मिल गई थीं। रीतिकाल में भक्ति की तन्मयता कम रही, काव्य और कला का पक्ष अधिक दृढ़ होने के कारण उनका रूप ही बदलकर सामने आया। भक्तों की कृपा से लौकिक जीवन में अलौकिक और अलौकिक जीवन में लौकिक देखने लगे थे। शृङ्गार के समुद्र में कहीं-कहीं उनके भक्तहृदय की झलक भी इसमें मिल जाती है, तो हम आश्चर्य करते हैं, परन्तु यह आश्चर्य की बात नहीं। सच तो यह है कि रीतिकवियों ने काव्यपक्ष में शास्त्रीय परम्परा (रस, अलंकार) का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था। परन्तु भावपक्ष में वे लोकजीवन और कृष्णचरित को ही लेकर चल रहे थे।

धीरे-धीरे काव्य व्यवसाय हो गया। जनरुचि बिगड़ने लगी। राजाश्रय पहले ही बिगड़ा हुआ था। बिहारी के शब्दों में—

कली अली सों बिंध रह्यो आगे कौन हवाल ?

ऐसी परिस्थिति में, राजकीय विलासता, युग की शिथिलता, बिगड़ी जनरुचि, संस्कृत आचार्यों का प्रभाव और फ़ारसी कविता के संपर्क में होकर हिन्दी रीतिकाव्य-धारा बही। केशवदास की रसिकप्रिया और कविप्रिया की परिपाटी नहीं बनी, परन्तु रसवादी चिंतामणि के प्रवेश करते ही कविता का अखंड रसस्रोत बह निकला। चिंतामणि के अतिरिक्त अन्य प्रमुख कवि हैं—सेनापति, बिहारी, मतिराम, कुलपति मिश्र, महाराज जसवंतसिंह, सुखदेव मिश्र। परम्परा के प्रभाव से जिस कुत्सापूर्ण काव्य का निर्माण हो रहा था, केवल सेनापति ही उससे कुछ ऊपर उठे हुए हैं। उनके प्रकृति-वर्णन की स्वाभाविकता और सरसता सारे रीति-काव्य में नहीं मिलेगी। षट्ऋतु-वर्णन में अधिकांश कवि उद्दीपन

भाव का निरूपण ही सामने रखते थे। परन्तु सेनापति ने प्रकृति के स्वतंत्र चित्र दिए हैं जिनमें काव्य-प्रसिद्धियों और कल्पना को भी उचित स्थान मिला है।

उन्नीसवीं शताब्दी के साथ राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बदलीं। देश मुसलमान शासकों के हाथ से निकलकर अंग्रेज शासकों के हाथ में चला गया। बड़े-बड़े राज्य हड़प लिये गये। छोटे-छोटे राज्य और जागीरदार रह गये। कवियों के यही मात्र आश्रय थे। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हम हिंदी कविता में कोई परिवर्तन नहीं पाते—रीति, शृंगार, वैष्णव, संत सभी काव्य धाराएँ मरणोन्मुख हैं, परन्तु चल रही हैं। राधाकृष्ण को लेकर शृङ्गार-काव्य की रचना की मात्रा इस काल में भी कम नहीं है। इस समय के मुख्य कवि पद्माकर, ग्वाल, लछिराम, गोविन्द गिलाभाई, प्रतापसाहि और पजनेस हैं। इन कवियों ने भाषा के नवीन ढंग के प्रयोग से अपने काव्य में पिछले कवियों से कुछ विशेषता लाने की चेष्टा की है—शब्द-सौन्दर्य पर बल दिया जा रहा है, भावानुकूल शब्द-योजना, रस-पोषक भाषा का प्रयोग, उक्तियों की नवीनता और रसिकता, अनुप्रास एवं वर्ण-मैत्री का प्राधान्य—ये बातें नई दिशा को सूचित करती हैं। कवि भाव की मौलिकता की अधिक परवाह नहीं करता, परन्तु उसके भाषा के नवीन प्रयोगों ने भाव में भी कुछ न कुछ मौलिकता उत्पन्न कर दी है। इसी समय कुछ ऐसे कवियों के दर्शन होते हैं जिन्होंने प्रेम के प्रकृत रूप को समझा था और भाषा की चहल-पहल में न पड़कर प्रकृत रूप से ही अपने काव्य को उपस्थित किया। ये कवि बोधा, घनानन्द, रसखान आरम्भ की उस परम्परा को आगे बढ़ाते हैं जो पूर्व रीतिकाल में शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभूति के आधार पर श्रेष्ठतम काव्य की सृष्टि कर चुके थे। इस उत्तरार्द्ध के सबसे महान् कवि हरिश्चन्द्र (१८५०—८५) हैं।

इन्होंने रीतिशास्त्र और परिपाटी से मुक्त रह कर भी बहुत-सा काव्य लिखा, यद्यपि परिपाटीबद्ध काव्य भी कम नहीं है। हाँ, प्रेम के प्रकृत रूप को उन्होंने शास्त्रों से नहीं, अपने अनुभव से समझा था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकाव्य कुछ विशेष परिस्थितियों की उपज था और उसने २५० वर्ष तक हिंदी कविता के क्षेत्र में एकच्छत्र राज किया। १६५० ई० से लेकर १६०० ई० तक एक विशेष प्रकार की विचारधारा काव्य-जगत में चलती रही जो अन्य काव्यधाराओं से अनेक प्रकार भिन्न थी। इस रीतिकाव्य के आरंभ में केशवदास आते हैं और अंत में हरिश्चन्द्र और श्रीधर पाठक। हरिश्चंद्र और श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली की कविता का प्रवर्तन भी किया, परंतु वे अपने ढंग पर रीतिकाव्य के अंतिम कवि थे। रीति-कविता फिर भी लिखी जाती रही और बीसवीं शताब्दी में भी जगन्नाथप्रसाद रत्नाकर जैसा सुन्दर कवि हमें मिल सका। परंतु जनता का बल उसे उसी तरह प्राप्त नहीं रहा, जिस तरह पिछली ढाई शताब्दी में।

रीतिकाल की कविता में मनुष्य की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ प्रकाशित हुईं। ये प्रवृत्तियाँ सब देशों सब कालों में सत्य हैं। इसी से रीतिकाव्य की कविता का सदा महत्व रहेगा। ये प्रवृत्तियाँ थीं —१ प्रेम, विलास और दाम्पत्य जीवन की चुहलों का वर्णन, २ सौन्दर्य-दर्शन, ३ पांडित्य-प्रदर्शन, ४ भाषा का व्यंगात्मक (लाक्षणिक) और कला-प्रधान प्रयोग। प्रत्येक युग के काव्य में इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ रहती हैं। परंतु रीतिकाल में यही प्रवृत्तियाँ सब कुछ बन गई थीं। जिस प्रकार मनुष्य केवल दो चार प्रवृत्तियों को लेकर चले तो अपूर्ण है, इसी प्रकार रीतिकाव्य भी केवल कुछेक प्रवृत्तियों को ले चलने के कारण अपूर्ण है। परंतु अपने में तो फिर भी वह बहुत कुछ पूर्ण है ही।

हिंदी-काव्य के आदिकाल में ही इन प्रवृत्तियों की झलक मिल गई थी। चारणकाव्य और सामंती काव्य में यही सब प्रवृत्तियां हैं, परंतु उसका मूल स्वर वीरभाव होने के कारण ये प्रवृत्तियाँ इतनी पुष्ट नहीं हैं। विद्यापति के काव्य में हम पहली बार ये सब प्रवृत्तियाँ अपनी पराकाष्ठा में पाते हैं। राधाकृष्ण के नाम तो केवल नाम-मात्र हैं, विद्यापति के काव्य में उनके पीछे आध्यात्मिकता बहुत कम है। नायक-नायिका का बहुविधि भाव-विलास ही 'पदावली' के गीतों का विषय है। यह अवश्य है कि विद्यापति भागवत और जयदेव से प्रभावित हैं परंतु उनकी राधा-कृष्ण-कथा का सारा ढांचा ही दूत-दूतियों की चुहलों, पूर्वराग, मान, अभिसार और मिलन के प्रसंगों पर खड़ा है। विद्यापति का समय १३७५ ई०—१४४८ ई० तक है। सूरदास का समय १४८६-१५८५ तक है। यह स्पष्ट है कि विद्यापति और सूरदास दोनों पर रीति विचारधारा का गहरा प्रभाव है। यदि विद्यापति के बाद अगली शताब्दी में ब्रज के धार्मिक आन्दोलन उठ खड़े नहीं होते, तो १४००-१६०० तक के काव्यमें हम रीति-कविता का विशेष विकास पाते। परन्तु इन धार्मिक आन्दोलनों ने जनता और कवियों का ध्यान उपरोक्त प्रवृत्तियों से हटा कर धर्म की ओर खींचा। अतः रीति-काव्य की धारा कृष्णभक्ति काव्य में होकर बहने लगी और उसका रूप विकृत हो गया। वास्तव में कृष्णभक्ति-काव्य में प्रच्छन्न रूप से रीति और शृंगार का आग्रह है। राधा और गोपियों को लेकर कृष्ण के जो प्रेम-प्रसंग मिलते हैं, उन्हें जहाँ धर्मप्राण साधक रूपक और अध्यात्म के रूप में ग्रहण करता था, वहाँ साधारण रसिक रीतिकाव्य के रूप में उससे आनन्द लेता था। जब एक शताब्दी बाद यह धार्मिक प्रभाव कम हो गया, तो रीति-काव्य की धारा अपने असली रूप में सामने आई।

जब यह धारा नये स्वतंत्र रूप में सामने आई, तब काव्य

काव्य में बहुत कुछ ऐसा कहा जा चुका था जो रीतिकाव्य के भीतर आना चाहिए था। वाग्वैदग्ध्यपूर्ण नयन के पद, मान, मानमोचन, खंडिता, स्थूल-मिलन और वियोग के पद, पांडित्यपूर्ण दृष्टिकूट और राधाकृष्ण के सौन्दर्य-वर्णन के पद रीतिकाव्य की बहुत-सी सामग्री को नये रूप में उपस्थित कर चुके थे। अतः कवियों ने एक नई परिपाटी से काम लिया। उनकी दृष्टि मम्मट, पंडितराज जगन्नाथ और अन्य आचार्यों पर गई और उन्होंने साहित्यशास्त्र की आवश्यकता समझते हुए रीति के हिंदी ग्रन्थ उपस्थित करना आरंभ किये। कवि-कर्म इतना ही रह गया कि संस्कृत के ग्रन्थों में जहाँ उदाहरण प्रसिद्ध ग्रन्थों के रहते थे, वहाँ ये नये कवि धड़ल्ले से अपने रचे उदाहरण देने लगे। इस प्रकार रीतिकाव्य का वह बड़ा भाग तैयार हो गया जिसे हम उदाहरण-काव्य कह सकते हैं। इनमें न कवि की स्वतंत्र वृत्ति का परिचय मिलता है, न उसके आचार्यत्व का। कुछ दूसरे कवि इस कवि-कर्म तक ही नहीं रह गये। उन्होंने प्राकृत मुक्तक काव्य (आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती) और संस्कृत के सुभाषितों को सामने रखकर स्वतंत्र रूप से प्रेम-विलास को लेकर मुक्तकाव्य की सृष्टि की। वास्तव में हम पहले कवियों का कविकर्मी कहेंगे, इन दूसरे कवियों को कवि। इन कवियों और कवि-कर्मियों का इतना बड़ा भंडार हिंदी साहित्य में सुरक्षित है कि अभी उस पर सम्यक् विचार ही नहीं हो सका है। उसकी अपनी त्रुटियाँ हैं, अपनी दुर्बलताएँ हैं, परन्तु बहुत कुछ ऐसा भी जो सुन्दर है और जो काल के झोंकों में भी बचा रह सका है। सौन्दर्य, प्रेम, विलास और जीवन की तरुणाई की अनेक रँगीली परिस्थितियों से अनुरंजित हिंदी का रीतिकाव्य लांछित सही, परन्तु बहुत कुछ अंशों में सुन्दर और स्वस्थ भी है, आज यह कहना कोई बड़े साहस की बात नहीं।

केशव के वीरकाव्य के कुछ नमूने

रतन-बावनी

दूहा

भूषिक-वाहन गज-बदन एक-रदन मुद-मूल
बंदहुँ गण-नायक-चरण शरण सदा सुख-मूल
ओड़छेन्द्र मधुशाह सुत रतनसिंह यह नाम
बादशाह सौं समर करि गये स्वर्ग के धाम

तिनकौं कछु बरनत चरित, जा विधि समर सु-कीन
मारि शत्रु-भट विकट अति, सैन सहित परबीन

युद्ध का कारण

जिहि रिस कम्पहि रूस रूम, कम्पहिं रन अनैल
जिहि कम्पहि खुरसान शान तुरकान बिहूरह
जिहि कम्पहि ईरान तूर्व तूरान बलख्खह
जिहि कम्पहि बुख्खार तार तातार सलख्खह

राजाधिराज मधु शाह नृप, यह विचार उद्दित भयव
हिन्दुवान धर्म रच्छक समुझि, पास अकब्बर के गयव

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव
जिमि तारन के माँह इन्दु शोभित छवि छायव
देख अब्बर शाह उच्च जाया तिन केरो
बोले वचन विचारि कहौ कारन यहि केरो

दगह पाय दसहू दिसह, भागी सबहि सरकिगह
इक मधुकर शाह-नरेन्द्र सुत, रन करन अरुझिगह
दीठि पीठि तन फेर पीठ तन तकन न दिल्लिय
फिरहु फिरहु फिर फिरहु करन दल सकल उमगिय
ठान-ठान निज थान मुरकि पठान, धुनाए
काढ़-काढ़ तरवार नवल ताहिन तहं आए
इक इक घाउ पलिशव सबन, रतनसेन रनधीर
जनु ग्वाल बाल होरी भरति, मंडल छोर अबीर कहँ

दोहा—रुपे शूर सामंत रण, लरहिं प्रचारि-प्रचारि
पिच्छल पग नहि चलहि कोउ, जुझत चलहिं अगारि

मरण धारि मन नियो वीर मधुकर सुत आयो
विचल नृपति सब मलेच्छ, देखि दल धर्म लजायो।
कटु कुभण्ड सब कप्पिय कुँवर रुन्धहु जुरि जंगहि
तिल तिल तन कट्टिव मुरकि फेरी नहि अंगहि
कहि केशव तन बिन शीश है, अतुल पराक्रम करम किय
सोइ रतनसेन मधुशाह सुव तब कृपाल दुहु हत्थ लिय

दोहा—चले शूर सामंत सब, धरम धारि प्रभु काम
कोपेहु तहँ मधुशाह-सुव, ज्यों रावण पर राम

करि श्रीपतिहि प्रणाम इष्ट अपने सब बुल्लिव
पातशाह सुनि खबर आय बीचहि दल ढिल्लिव
सकल समिटि सामंत गहिव तब जाइ बाट कहि
लहिव जुद्ध अगवान शूर सब चले सामुहहि
रजपूत टुट्टि धरणी गहहिं, केशव रण तहँ हंकियव
सोइ रतनसेन महाराज जू, विकट भट्ट बहु कट्टियव

दोहा

रतनसेन हय छंडियो, उत कूदे सामन्त
नोन उबारन शीश तें, कियो लरन को तन्त

बागी लोगन को वचन

भुल्लिव छत्तिय वचन सुनहु महाराज सुकानहि
आर जुद्द को छांड़ि जाहु सुरपुर तिहि ठायहि
हम करिहैं संग्राम आज आवहि तुव काजहि
राज धर्म तुम सुभग त्यागि आपुन परिवारहि
किज्जिव सुराज अरिमूल हनि, केशव राखहि लाज रन
तुव नौन उतारहिं खिन्त महि, यश गावहिं कवि तुम धरन

है वाणी आकाश सुनहु सब शूर संत यहि
रहहुँ तुमारे साथ मनहि करि राखहु अग्रहि
राखहु पति कुल लाज आवहि खगगन तनु खंडहु
जाहु मलेच्छ न इक सबै रण सैन विहंडहु
कहि केशव राखहु रणभुवन, जियत न पिच्छल पग धरहु
सुद्द रतनसेन कुल लाड़िलहु, रिपु रण में कट्टहि करहु
सुनि रतन सेन मधुशाह सुव, पंच सथ्य तहि लज्जिये
कहि केशव पंचन संग रहि, पंच भजे तहँ भज्जिये

विप्र उवाच

लोकपाल दिगपाल जिते। भुवपाल भूमि गुनि
दानव देव अदेव सिद्ध। गन्धर्व सर्व मुनि
किन्नर नर पशु पच्छि जच्छ रच्छस पन्नग नग
हिंदुन तुर्क अनेक और जल थलहु जीव जग
सुरपुर नरपुर, नागपुर, सब सुनि केशव सज्जियहुं
सुनि महाराज मधुशाह सुव, को न जुद्ध जुरि भज्जियहुं

कुमार उवाच

महाराज मलखान, ठान लगि प्राणन छंडिय
गहिव तरल तरवार तुरत अरि दल बल खंडिय

राजकाज धरि लाज लोह लरि तुरुक बिहंडिय
खरगसेनि हनि तासु वासु बैकुण्ठहि मंडिय
परताप रुद्र परताप करि, अरि कुल बिनु लष्यत कियहु
कहि केशव नरसह युद्ध करि, इन्द्रासन उद्दित लियहु

विप्र उवाच

द्विज मांगे सो देव विप्रको वचन न खंगिय
द्विज बोलै सो करिय विप्र को मान न भंगिय
परमेश्वर अरु विप्र एकसम जानि सु लिज्जिय
विप्र बैर नहिं करिय विप्र कहँ सर्वसु दिज्जिय
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, विप्र बोलकिन लिज्जियहु
कहि केशव तन मन वचन करि, विप्र कह्य सुई किज्जिहु

कुमार उवाच

पतिहिं गए मति जाय गए मति मान गरै जिय
मान गरे गुन गरै गरे गुन लाज जरै जिय
लाज जरे जस भजै जस धरम जाइ सब
धरम गये सब करम गये पाप बसै तब
पाप बसे नरकन परै, नरकन केशव को सहै
यह जान देहुँ सरबसु तुम्हें, सुपीठ दएँ पति ना रहै

दोहा

पति मति अति दृढ़ जानि कर, सुनि सब बचन समाज
राम-रूप दरसन दियौ, केशव त्रिभुवन राज

कुमार उवाच

बिना लरें जो चलहुँ सुखद सुन्दर तब को कह
जो लरि चलौ सदेह लोग भागौ कहि मों कह

तातें जुद्धहि जुरहुं जुद्ध जोधन अँग नाँऊ
भुवि राखौ दै बाहु सीस ईसहिं पहिराऊँ
राखहुँ शरीर खिन्तहि न्नमरि, नहिं केशव नेकहु टलौं
इहिं भाँति लोक अवलोक करि तबहिं सुरुद्र सथ्थहिं चलौं

श्री परमेश्वर उवाच

प्रथम धरेहु अवतार तैं जु मेरे व्रत किन्नव
जीवन तनु धन मरदि तबहि मेरौ प्रण लिन्नव
प्रण प्राणन कौ बाद बहुत मेरे मन भायौ
अब केशव इहिकाल अवहि हौं भलौ रिझायौ,
सुनि महाराज मधुशाह सुव, जदपि लोभ नहिं तो हियव
तदपि सु मंगहि मंगने, हौं प्रसन्न तोकहुं भयव

कुमार उवाच

लै कर वर तव वीर सभा मंडल सन बुल्लिय
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहँ रुत्त न डुल्लिय
लाज काज धरि लाह लोह लरि लरि यश लिज्जहु
विकट कटक मैं हटक पटक भट भुवि मँह दिज्जहु
यह अनूप मेरौ वचन, केशव चित धरि सुनहु सब
मरहु तौ मो सथ्थहि चलहु, भज्जहु तौ भजि जाव अब

साथ के लोगन कौ वचन

तुम बालक हम वृद्ध इते पर जुद्ध न देखे
तुम ठाकुर हम दास कहा कहिये इहि लेखे
कहि आवै सो कहौ कहा हम तुमरौ करिहैं
हम आगैं तुम लरौ तु अब हम बूड़ि न मरिहैं
कहि केशव मंडहिं रारि रण, करि राखैं खित्तहि भवन
सुनि रतनसेन मधुशाह सुव, पुनि न होइ आवागवन

कुमार उवाच

जानि शूर सब सभा प्रगट पंचम तनु फुल्लिय
साधु-साधु यह वचन पाय सुख सब गौं झुल्लिय
दै बरदान प्रसिद्ध सिद्ध कीनौ रण मद्धहि
अधिक सुवेश सुदेश उद्दित उद्दित अरु बुद्धहि
लखि लोक ईश गुर ईश मिलि, रचि कविता कविता ठई
सुरईश ईश जगदीश मिलि, एक एक उपमा दई

उपमा-वर्णन

किधौं सत्त की शिखा शोभ-शाखा सुख दायक
जनु कुल दीपक जोति युद्ध-तम मेटन लायक
किधौं प्रगट पति-पुंज पुन्य कर पल्लव पिक्खिय
किधौं कित्ति-परभात तेज मूरति करि लिक्खिय
कहि केशव राजत परम, रतनसेन शिर शुम्भियहु
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ, फणपति फण उद्दिय कियहु

साजि साजि गजराज-राजि आगैं दल दीनहि
ता पीछे पति-पुंज पुंज पयदर रथ कीनहि
ता पीछे असवार शूर केशव सब मोसन
चलत भई चकचौंध बांधि बखतर बर जोशन
तब कटक भये दल भट्ट सब, तुरत सेन दघटेत रन
जनु विज्जु संग मिलए कइक, एकहि पवन फकीर घन

दोहा

राजा सनमुख तनु तजै, करै स्वर्ग में भोग
दुनियाँ में यश विस्तरै हँसे न जग कौ लोग
रतनसेन रण रहिव प्राण छत्तिय भ्रम राखहु
करहु सुवचन प्रमाण शूर सुरपुर पग नाखहु

डेढ़ सहस असवार सहस दो पयदर रहियव
पील पचास समेत इतिक सुरपुर नग लहियव
जहँ सहस चारि सैना प्रबल, तिन महँ कोउ न घर गयव
सोइ रतनसेन महाराज को, केशव यश छंदन कहिय

वीरसिंह देव चरित

अबुलफजल और वीरसिंह देव का युद्ध

कुण्डलिया

सुख पायो बैठे हुते, एक सेमे सुलतान
खाँ सरीफ तिनि बोलि लिये, वीरसिंह देव सुजान
वीरसिंह देव सुजान मान मन बात कही तब
या प्रयाग में कुवँर सौहँ कहिये मो सो अब
तासौं करौं विचार करहिं अपने मन भाए
अनत न कबहूँ जाउ रहहू मो सो सँग सुख पाए
पायनि पर तसलीम करि बोल्यो वीरसिंह राज
हौं गरीब तुम प्रकट ही सदा ग़रीब निवाज
सदा गरीब निवाज लाज तुमहीं लघु लामी
विनती करिये कहा महा प्रभु अन्तरजामी
लोभ मोह भय भाजि भजे हम मन वच कायनि
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहिं पायनि

चौपाई

सौं है कीन्ही। माँझ प्रयाग। वीर। सिंह सुलतान सभाग
तुमहीं मेरे दोई नैन। तुम हो बुधि बल भुज सुख दैन
तुमहीं। आगे पीछे चित्त। तुमहीं मंत्री तुम हौं मित्त
मात पिता तुम परयो पान। तुम लगि छाड़ौ अपने प्रान

द्विज चरणोदक बुन्द कुन्द सींचत सुख वढ्ढिय
गोदानन के देत धर्म-तरुवर दिन चढ्ढिय
सत्त फूल फुल्लिय सरस, सुयश वास जग मंडिये
कहि केशव फलती वेर कर "प्रति" फल किमिकर छंडिये

विप्र उवाच

दानी कहा न देय चोर पुनि कहा न हरई
लोभी न कहा न लेय आग पुनि कहा न जरई
पापी कहा न करै कह न वेचै व्योपारी
सुकवि न वरनै कहा कहा साधू न सँचारी
सुनि महाराज मधुशाह सुव, सूर कला नहिं मँडई
कहि केशव घर धन आदि दै, साधु कहा नहिं छँडई

विप्र उवाच

पञ्च कहै सो कहिय पञ्च के कहत कहिज्जिय
पञ्च लहै सो लहिय पञ्च के लहत लहिज्जिय
पञ्च रहै तो रहिय पञ्च के दिष्पित दिष्पिय
परमेसुर अरु पञ्च सवन मिलि इक्कय लिष्पिय

वीरसिंह उवाच

इक साहि वअरु कीजतु प्रीति। सव दिन चलन कहत इह रीति
तुम्हैं छोड़ि मन आवै आन। तौं भूलौ सव धर्म विधान
यह सुनि साहि लह्यो सव पुख्ख। लाग्यो कहन आपनौं दुःख
जितनो कुल आलम परवीन। थावर जङ्गम दोई दीन
तामे एके वैरी लेख। अव्बुल फजल कहोने सेख
वह सालतु है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तो काढ़हि मित्त
जितने कुल उमरावनि जानि। ते सव करत हमारी कानि
आगे पीछे मन आपने। वल न मोहिं तिनुका करि गने
हजरत को मन मोहित भयो। याके पीर अन्तर पर्यो

जहँ रतनसेन रन करै [illegible], [illegible] कहि न सक्यो कोऊ
तहँ है दयाल गोपाल नाथ, तिन [illegible] [illegible] [illegible]

विप्र उवाच

जुतौं भूमि तौ बेलि बेलि लगि भूमि न हारै
जुतौ बेलि तौ फूल फूल लगि बेलि न डारै
जुतौ फूल तौ सुफल सुफल लगि फूल न तोरै
जो फल तौ परिपक्व पक्व लगि फलहि न तोरै
जा फल पकै तौ काम गए, परिहरिहि जग [illegible]
प्रान जुतौ पति बहुरहै, पति लगि प्रान न छाँड़िये

कुमार उवाच

गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जमै जरै तें
फल फूले तें लगहि फूल फूलंत भरे तें
केशव विद्या विकट निकट फिरि तें आवै
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति पुनि पावै
फिर होइ स्वभावसुशील मति, अगन गति बहु गाइये
प्राण गये फिरि फिरि मिलहि, पति न गए पति पाइये

विप्र उवाच

मातु हेत पितु तजिय के हेत सहोदर
सुतहि सहोदर हेत सखा सुत हेत तजहु नर
सखा हेत तजि बन्धु, बन्धु हित तजहुँ सुजन जन
सुजन हेत तजि सजन, सजन हित तजहु सुतन मन
कहि केशव सुख लगि घरनि तजि, घरनी हित घर छँड़िये
सुई छँड़िय सब घर हेत पति, प्राण हेत पति छँड़िये

कुमार उवाच

जासु बीज हरि-नाम जम्यो सुचि सुकृति भूमि थल
एकादशी अनेक विमल कोमल जाके दल

द्विज चरणोदक वुन्द कुन्द सींचत सुख वढ्ढिय
गोदानन के देत धर्म-तरुवर दिन चढ्ढिय
सत्त फूल फुल्लिय सरस, सुयश वास जग मंडिये
कहि केशव फलती वेर कर "प्रति" फल किमिकर छंडिये

विप्र उवाच

दानीं कहा न देय चोर पुनि कहा न हरई
लोभी न कहा न लेय आग पुनि कहा न जरई
पापी कहा न करै कह न वेचै व्योपारी
सुकवि न वरनै कहा कहा साधू न सँचारी
सुनि महाराज मधुशाह सुव, सूर कला नहिं मँडई
कहि केशव घर धन आदि दै, साधु कहा नहिं छँडई

विप्र उवाच

पञ्च कहै सो कहिय पञ्च के कहत कहिज्जिय
पञ्च लहै सो लहिय पञ्च के लहत लहिज्जिय
पञ्च रहै तो रहिय पञ्च के दिष्पित दिष्पिय
परमेसुर अरु पञ्च सवन मिलि इक्कय लिष्पिय

वीरसिंह उवाच

इक साहि वअरु कीजतु प्रीति। सव दिन चलन कहत इह रीति
तुम्हैं छोड़ि मन आवै आन। तौं भूनौ सव धर्म विधान
यह सुनि साहि लह्यो सव पुख्ख। लाग्यो कहन आपनौं दुःख
जितनो कुल आलम परवीन। थावर जङ्गम दोई दीन
तामे एके वैरी लेख। अव्वुल फजल कहोने सेख
वह सालतु है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तो काढ़हि मित्त
जितने कुल उमरावनि जानि। ते सव करत हमारी कानि
आगे पीछे मन आपने। वल न मोहिं तिनुका करि गने
हजरत को मन मोहित भयो। याके पीर अन्तर परयो

आनन्दे जन पद सुख पाइ। नीलकंठ जनु मेघहि पाइ
पठये चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ
चारन कही कुँवर सो आइ। आए नरवर सेख मिलाइ
यह कहि भये सिन्ध के पार। पल पल लखै सेख की सार
आए सेख मीच के लिए। पुर पराइछे डेरा किये
अबुल फ़जल बड़े ही भोर। चले कूँच कै अपने जोर
आगे दीनी रसद चलाइ। पीछे आपुनु चले बजाइ
वीरसिंह दौरे अरि लेखि। ज्यों हरि मत्त गयंदनि देखि
सुनतहि वीरसिंह को नाउँ। फिरि ठाढ़ौ भयो सेख सुभाउ
परम सरोष सो सेख बखानि। जस अपर नृसिंहहि जानि
दौरत सेख जानि बड़ भाग। एक पठान गही तब बाग

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौरु। भूलिन सत्रुहि सामुहूँ दौरु
चलु चलु ज्यों क्यौंहूँ चलि जाहि। तेई पाइ सुख पावै साहि
पुनि अपने मन में करि नेम। जैवो चढ़ि तहँ साह सलेम

सेख उवाच

जूझत सुभट ठाँवहीं ठाँव। कहियो अब कैसे चलि जाँव
आनि लियो उन आलम तोग। भाजे लाज मरैगी लोग

पठान उवाच

सुभटन को तो वहऊ काम। आप पेर पहुँचावहि राम
जो तू बचु तै आलम तोग। जीत बाचि है रचि है लोग

सेख उवाच

मैं बल लीनौं दक्खिन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं सुवभार आपु सिर लए
मेरो साहि भरोसो करै। भाजि जाउँ मैं कैसे धरै
जर सो आलम तोग गँवाइ। कहिहौं कहा साहि सौं जाइ

आनन्दे जन पद सुख पाइ। नीलकंठ जनु मेघहि पाइ
पठये चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ
चारन कही कुँवर सो आइ। आए नरवर सेख मिलाइ
यह कहि भये सिन्ध के पार। पल पल लखै सेख की सार
आए सेख मीच के लिए। पुर पराइछे डेरा किये
अबुल फ़जल बड़े ही भोर। चले कूँच के अपने जोर
आगे दीनी रसद चलाइ। पीछे आपुनु चले बजाइ
वीरसिंह दौरे अरि लेखि। ज्यों हरि मत्त गयंदनि देखि
सुनतहि वीरसिंह को नाउँ। फिरि ठाढ़ौ भयो सेख सुभाउ
परम सरोष सो सेख बखानि। जस अपर नृसिंहहि जानि
दौरत सेख जानि बड़ भाग। एक पठान गही तब बाग

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौरु। भूलिन सत्रुहि सामुहूँ दौरु
चलु चलु ज्यों क्यौंहूँ चलि जाहिं। तेई पाइ सुख पावै साहि
पुनि अपने मन में करि नेम। जैवो चढ़ि तहँ साह सलेम

सेख उवाच

जूझत सुभट ठाँवहीं ठाँव। कहियो अब कैसे चलि जाँव
आनि लियो उन आलम तोग। भाजे लाज मरैगी लोग

पठान उवाच

सुभटन को तो वहऊ काम। आप फेर पहुँचावहिं राम
जो तू बहु तै आलम तोग। जौत बाचि है रचि है लोग

सेख उवाच

मैं बल लीनौं दक्खिन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं भुवभार आपु सिर लए
मेरो साहि भरोसो करै। भाजि जाउँ मैं कैसे धरै
कह यों आलम तोग गँवाई। कहिहौं कहा साहि सौं जाई

जब खुरखेट निपट मिटि गई। रन देखन की इच्छा भई
कहुँ नोग कहूँ डारे तास। कहूँ सिंदूरन पता का प्रकास
कहुँ डारे नेजा तरवारि। कहुँ तरकस कहुँ तीर निहारि
कहूँ रुण्ड कहूँ डारे मुण्ड। चहूँ ओर भुंडनि के झुण्ड
हिलत लुढ़त कहु सुभट अपार। छूटिनि टिकि टिक उठत तुषार
देषत कुँवर गये तब तहाँ। अब्दुल फजल सेख हैं जहाँ
परम सुगन्ध गन्ध तन परयौ। सोनित सहित धूरि धूसर भयो
कछु सुख कछु दुख व्यापत भये। लै सिर कुँवर बड़ौनहिं गये

लेखक की अन्य रचनायें

कविता-संग्रह

१ ताण्डव

उपन्यास

२ अम्बपाली

निबन्ध

३ प्रबन्ध-पूर्णिमा

इतिहास

४ हिन्दी-साहित्य : एक अध्ययन

आलोचना

५	कबीर :	एक अध्ययन
६	विद्यापति :	" "
७	सूरदास :	" "
८	तुलसीदास :	" "
९	नन्ददास :	" "
१०	केशवदास :	" "
११	बिहारी :	" "
१२	भारतेन्दु हरिश्चंद :	" "
१३	जयशङ्करप्रसाद :	" "
१४	'निराला' :	" "
१५	प्रेमचन्द :	" "

—प्रकाशक—

कि ता ब म ह ल

जीरो रोड, इलाहाबाद